सिद्धयोग

सम्पादक : [illegible] महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सर्वांइ 283202 (आगरा) उ.प्र.

जन्मोत्सव विशेषांक

वर्ष : 51; अंक : 7 ; अक्टूबर 2018

प्रकाशन तिथि : 01.10.2018 मूल्य : एक प्रति : [illegible] द्विवार्षिक : [illegible]

अमृत कण

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्।।

तीनों लोकों के स्वामी, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक परमेश्वर को प्रणाम कर मैं अनेक शास्त्रों से उद्धृत करके 'राजनीति–समुच्चयः' नामक ग्रन्थ का लेखन–कार्य आरम्भ करता हूं।

◆ ◆ ◆

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याऽकार्यं शुभाऽशुभम्।।

श्रेष्ठ मनुष्य इस शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करके वेदादि शास्त्रों में उपदिष्ट कर्तव्य–अकर्तव्य, पुण्य–पाप, धर्म–अधर्म को ठीक–ठीक जान जाता है।

◆ ◆ ◆

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते।।

मैं लोगों के मंगल की इच्छा से उस 'राजनीतिसमुच्चय' का वर्णन करूंगा, जिसको जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।

◆ ◆ ◆

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुःखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।।

मूर्खशिष्य को पढ़ाने से, दुष्टस्त्री का भरण–पोषण करने से और दुःखी जनों के साथ व्यवहार करने से बुद्धिमान मनुष्य भी दुःख उठाता है।

◆ ◆ ◆

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव च संशयः।।

कटुभाषिणी और दुराचारिणी स्त्री, धूर्त स्वभाव वाला मित्र, उत्तर देने वाला नौकर और सर्प वाले घर में रहना–ये सब बातें मृत्युस्वरूप ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 51 अंक : 7

बैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृतं देवगणैः परं वरम्।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्।।

(गर्ग भा 4/8)

हे प्रभो! आप बैकुण्ठपुरी में सदा लीला में तत्पर रहने वाले हैं। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परमश्रेष्ठ हैं। गो–पालक की लीला में आपकी विशेष रुचि रहती है – ऐसे मैं आपका भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकाधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

अक्टूबर 2018

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	15
4.	विप्रादि दर्शनम् नमामी नमामी– जगदीश राए बंसल	18
5.	योग और कर्म– श्री सूर्यप्रसाद उपाध्याय	22
6.	हंस विद्या का हंस–मंत्र महावाक्य ही है– पं. मनोहरलालजी शर्मा	26
7.	श्री गुरुदेव के चरण कमलों के सम्पर्क की कुछ– श्री प्रो. ऋषिराम	35
8.	क्या करना चाहिए– समर्थ रामदास के उपदेश	40
9.	अद्भुत योग सामर्थ्य– श्री विष्णुदत्त शर्मा	41
10.	योग–आसन	48

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख

ध्यान की विधियाँ एवं उनकी अतुलित शक्तियाँ

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री प्रभु जी ध्यान की विधियाँ बताया करते थे। एक जगह पर एक अच्छे महात्मा अच्छी स्थिति के थे। उनसे मेरे सामने ही किसी व्यक्ति ने श्री प्रभु जी के विषय में पूछा—महात्मा जी! प्रभु जी क्या हैं? कैसे हैं? इस पर उन्होंने कहा—श्री प्रभु जी परम योगेश्वर सर्व शक्तिमान हैं उनकी ताकत का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता—कोई अन्त ही नहीं। किन्तु फिर एक बात और कही—उनकी भावना से किसी और को, किसी और आकृति को भी देखोगे वह आकृति भी तुम्हारे लिये सिद्ध हो जायेगी—तुम जिसका ध्यान करोगे वह भी सिद्ध हो जायेगा।

उस समय मुझे भगवान के ये शब्द याद आये **श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्द्धः स एव सः** अर्थात् जिस की जैसी श्रद्धा होती है परमात्मा वैसे ही बन जाता है। हम भगवान राम की, भगवान कृष्ण की भगवान शिव की तस्वीरें देखते हैं वह मन की कल्पना ही है। हमने भगवान राम को नहीं देखा, भगवान कृष्ण को नहीं देखा। पुस्तकों से पढ़कर अथवा किसी से सुनकर के, तस्वीर बनाने वाले के मन में जो तस्वीर बनती है वैसे ही तस्वीर बना लेता है। तुमने बाजार में जाकर देखा होगा भगवान कृष्ण की कई तस्वीरें होती हैं लेकिन वे तस्वीरें एक दूसरे से मिलती नहीं हैं। तस्वीर भिन्न–भिन्न होती हैं। बनाने वाले के दिमाग में जैसे–जैसे भाव होते हैं उसी कल्पना से चित्र बना लिया करता है। योग दर्शन में समाधि की प्राप्ति के बहुत से उपाय हैं उनमें एक उपाय है '**वीतराग विषयम् वा चित्तम्** अर्थात् वीतरागी पुरुषों के ध्यान से भी समाधि होती है। वीतराग पुरुष का जब हम चिन्तन करते हैं तो वह ही हमारे लिये परमेश्वर बन जायेगा। जब हम चिन्तन आरम्भ करते हैं तो वह हमारी कल्पना ही होती है। किन्तु ध्यान करने वाला जब उस आकृति का ध्यान करेगा तो उसकी अपनी मानसिक शक्ति से– ध्यान की शक्ति से उस तस्वीर में प्राण स्पन्दन होने लगेगा, तस्वीर बोलने लगेगी—आशीर्वाद देगी यह बातें तस्वीर से होने लगेंगी। हमें बहुत से ऐसे व्यक्ति मिलते हैं

जो श्रद्धापूर्वक भगवान की मूर्तियों का ध्यान किया करते हैं। श्री प्रभु जी बताया करते थे–इन मन्दिरों का निर्माण क्यों हुआ? यह केवल आरती पूजा के लिये ही नहीं है–मूर्तियों से मनुष्य के मन में श्रद्धा अंकुरित हो जाती है। वही चित्र देखते–देखते हमारे चित्त में अंकित हो जाता है और जब हम उनका ध्यान करते है तो वही चित्र ध्यान मे आने लगेगा। ध्यान में जो आकृति बन जायेगी उसके अन्दर अपने आप प्राण समाविष्ट हो जाया करता है। और वह आकृति बोला करती है आशीर्वाद देती है आदि–आदि कार्य होने लगते है। संसार में सभी शक्ति प्राप्त करना चाहते है। वह शक्ति जो शक्तिशाली है उनसे मिला करती है। योगी लोग दूसरे की शक्ति को प्राप्त करने के लिये क्या करते है? इसके कई उपाय है। पहला उपाय है यदि कोई योगी हमसे शक्तिशाली है तो उससे शक्ति प्राप्त करने का उपाय तो यह है **तद्विदि पाणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'** उन्हे नमस्कार करो, उनकी सेवा करो तब वह प्रसन्न होकर अपने ज्ञान का उपदेश करेगा। जब तक वह प्रसन्न नहीं होगा अपने भीतरी अनुभव व ज्ञान को नहीं बतायेगा–यह शक्ति प्राप्ति का एक उपाय हुआ। दूसरा उपाय है जो ध्यान से सम्बन्ध रखने वाला है। हम चाहते हैं अमुक व्यक्ति क्या मन्त्र जप रहा है तथा उसके मन में क्या–क्या विचार आ रहे हैं यह जानें तो इसका उपाय यह है कि यदि हमारे मन की ताकत बढ़ी हुई है धारणा ध्यान का अभ्यास करते–करते मानसिक स्थिति जिसकी इतनी उत्कृष्ट हो गई हो कि वह अपनी ताकत से दूसरे को आकर्षित कर सके अपने पास बुला सके। जैसे लोक में एक प्रभावशाली व्यक्ति किसी को बुलाता है इधर आओ! तो वह तुरन्त आ जाता है। पता नहीं गुरु जी मुझे क्यों बुला रहे हैं यह सोचकर दौड़ा हुआ आता है–या मालिक अपने किसी नौकर को बुलाता है तो वह आवाज सुनते ही तुरन्त भागा चला आता है इसी प्रकार से योगी की अपनी ताकत होती है। योगी जिस जीव को बुलाना चाहता है ध्यान में बैठकर जिसके लिये संकल्प करता है वह आकृति (व्यक्ति) जहाँ भी हो चटपट उसी समय सामने आ जायेगा ताकत वाला उसके सूक्ष्म शरीर को खींच लेगा। वह चला आयेगा। उसके सूक्ष्म शरीर से जो भी पूछना चाहेगा सूक्ष्म शरीर सब कुछ सत्य–सत्य बता देगा। सूक्ष्म शरीर की भी आकृति वैसी ही होती है जैसे स्थूल शरीर की। सूक्ष्म शरीर का पुतला सामने आयेगा और योगी के प्रभाव से सब कुछ बता देगा। तीसरा उपाय एक और है वह है **'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय का'**। यदि कोई योगी किसी के मन की स्थिति जानना चाहता है तो उसे योग ध्यान की विधि से जान पायेगा। ध्यान की स्थिति में ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन वस्तुयें रहा करती हैं। ध्यान करते–करते ध्येय ही सामने रहता है वही वही दिखलाई देता है। यह पातञ्जल ध्यान पद्धति है। एक और भी ध्यान की पद्धति है वह है **'ध्यानं निर्विषयं मनः'** अथवा **न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'**। मनुष्य ध्यान में बैठ जाये

और किसी भी वस्तु का चिन्तन न करे। मन को विचारों से शून्य कर दे इसमें भी वृत्ति निरोध हो जाती है। मैंने तुम्हें बताया था कि योग दो प्रकार से प्राप्त होता है। सिद्धों की कृपा पूर्वक शक्ति पात द्वारा तथा साधन योग से। ध्यान, धारणा का अभ्यास प्राणायाम, बन्ध–मुद्राओं का अभ्यास साधन योग है। मनुष्य योग अपनी योग स्थिति बनाने के लिए जो भी प्रयत्न करता है वह सब साधन योग है। समाधि प्राप्ति के लिए वीतराग पुरुषों का ध्यान करते हैं। किन्तु ध्यान इसलिए नही करते हैं कि उनसे कुछ प्राप्त कर लें। योगी उनके स्वरूप को ध्येय बनाकर उनका चिन्तन किया करते हैं। उसमें ही समाधि हो जाया करती है ध्यान करने से ही उन्हें वीतरागियों को ज्ञान हो जाता है। हमारे मन में धारणा बनी! हे शिव! हे विश्वनाथ! तो यहाँ संस्कार बने इधर उनको ज्ञान हो गया। अमुक व्यक्ति मुझे याद कर रहा है। चिन्तन मात्र से महापुरुष–सिद्ध पुरुष ध्यान करने वाले को जान लेते हैं। क्योंकि उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है। उनका जो जैसा चिन्तन करता है उसी रूप में उनके सामने आ जाता है। यदि कोई प्यार करता है तो प्यार करता हुआ उसका सूक्ष्म शरीर सामने आ जायेगा यदि कोई क्रोध करता है, सूक्ष्म शरीर क्रोध करता हुआ सामने आ जायेगा। चिन्तन से ही वे जान लिया करते हैं क्योंकि वे सर्वसमर्थ है किन्तु उनके अतिरिक्त भी एक योगी जो नियम से ध्यानाभ्यास करते हैं वह भी अपने संस्कारियों को जान लेते है। उनको भी ज्ञान हो जाता है कि अमुक व्यक्ति मुझे याद कर रहा है। अमुक भक्त को दुःख हो रहा है आदि–आदि बातें तत्काल ज्ञात हो जाती हैं।

द्रोपदी ने कौरवों की भरी सभा में संकट के समय भगवान को याद किया। सबसे पहले द्रोपदी ने भगवान के लिए एक बात कही–

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् कृष्ण गोपीजन प्रियः।
कौरवार्णव निमग्नां मां किं न पश्यसि केशव।।

हे महायोगी मुझे आप क्यों नहीं देख रहे हैं? उसके कहने का अभिप्राय यह है आप तो महायोगी है एक साधारण योगी भी जिसका अच्छा ध्यान लगता है। इस बात को जान लेता है कि मेरे अमुक भक्त को कष्ट है अमुक मित्र को संकट है। आप तो महायोगी हैं आप मुझे क्यों नहीं देख रहे हैं? मैंने दो दिन पूर्व प्रातिभ ज्ञान का वर्णन किया था। इसके उदय होने पर योगी के मन में सत्याभास होता है। जो कुछ जैसा हो रहा है वैसा ही उनके मन में भावना बनती है वह देखता नहीं है। देखना तो उसके संकल्प पर होगा बाद में। यदि उसके मन में भावना आ रही है अमुक स्थान पर वर्षा हो रही है तो उस स्थान पर वर्षा हो ही रही होगी इसमें शंका की कोई बात नहीं होगी। मैंने तुम्हें कई बार पहले भी रामस्वरूप सफीदों वाले की घटना सुनाई थी। हमारे एक महात्मा ने उनसे कह दिया कि आप जल्दी–जल्दी दीक्षा ले

लो। उसने जल्दी दीक्षा ले ली। बाद में उससे पूछा–आपने जल्दी दीक्षा लेने के लिये क्यों कहा–उन्होंने कहा–तुम्हारी पत्नी को प्रसव हो गया है उन्होंने लड़के को जन्म दिया है। सूतक से पहले ही दीक्षा लेनी चाहिए इसलिए मैंने जल्दी करने के लिये कहा था। बात ज्यों की त्यों थी। गुफा पर बहुत से आदमी मौजूद थे। उन्होंने पूछा–महाराज आप को कैसे पता लगा कि इसकी स्त्री को प्रसव हो रहा है। क्या आपने प्रसव होते हुये देखा? या आपको कोई स्वप्न हुआ आप को कैसे पता लगा? तो उसने बिल्कुल सत्य बताया–मैंने देखा नहीं, नजर मेरी नहीं गई किन्तु मेरे मन में भाव आया, बच्चा पैदा हो रहा है ऐसा संकल्प मेरे में आया। ऐसे संकल्प जब मेरे मन में आते हैं सब सत्य होते हैं इसलिए मैंने अपने संकल्प के आधार पर कह दिया कि जल्दी दीक्षा ले लो। और संकल्प आने के बाद जब योगी देखना चाहे तो उसके संकल्प से तत्काल दृष्टि भी वहाँ पहुँच जाती है। और उसे सब कुछ दीख जाता है–

बनारस में हमारा एक महात्मा सच्चिदानन्द रहता है। श्री प्रभु जी के चरण कमलों में आया था। श्री प्रभु जी ने उसे रसोई के काम के लिये चार–पाँच मासिक वेतन पर रख लिया था। मैं भी उन दिनों श्री प्रभु के चरणों में ऋषिकेश रहा करता था। थोड़े दिनों में उसे विरक्ति हो गई और उसने स्वर्गाश्रम में जाकर सन्यास ग्रहण कर लिया। सन्यास तो ले लिया किन्तु श्री प्रभु जी की कृपापूर्वक उसका ध्यान अपने आप चलता था। हमारे भाई बहिनों के बीच ध्यान में बैठने से भी उसकी स्थिति बढ़ी। सन्यास लेने पर भी बाद में श्री प्रभु जी से योग दीक्षा ले ली। वह वृद्ध हो गया है कानों से भी कम सुनाई देता है। हमारा एक बच्चा विष्णु है वह उनके पास जाया करता है–वह विष्णु से कहता था–देखो विष्णु। इस दीवार के अन्दर सिद्ध लोग आ रहे हैं श्री प्रभु जी आ रहे हैं। मैं इस दीवार से आगे की दृश्य देख रहा हूँ। यह सब उसके आत्म ध्यान की बातें हैं। मैं तुम्हें जिस बात को समझाना चाहता हूँ वह यह है कि जब योगी को प्रातिभ ज्ञान हो जाता है तो वह सत्य संकल्प वाला हो जाता है उसके मन में संकल्प आ रहा है अमुक स्थान पर वर्षा हो रही है अमुक स्थान पर अग्निकाण्ड हो रहा है तो ये बातें वस्तुतः हो रही होंगी तभी उसके मन में संकल्प आया। प्रातिभ ज्ञान होने के बाद यदि योगी की धारणा शक्ति प्रबल हो चुकी है तो प्रातिभ के अनुसार वह हजारों कोस दूर की वस्तु को भी छू लेता है यदि देखना चाहता है तो कोसों दूर की देख लेता है। यदि हजारों कोस दूर की बात सुनना चाहता है तो सुन लेता है यह सब बातें उसमें स्वाभाविक आ जाती हैं। मुझे आनन्द कन्द प्रभु जी की एक घटना याद आई। एक बार श्री प्रभु जी अमृतसर में विराजमान थे और कुछ दिन के लिये उन्होंने ऐसा कर दिया था कि अपने कमरे बन्द रखते थे किसी से मिलते जुलते नहीं थे। खास आवश्यक हुआ तो ही मिलते थे अन्यथा नहीं मिलते थे। उस समय वहाँ पर लोग दर्शन करने आते थे दर्शन करके

तुरन्त लौट जाया करते थे। श्री प्रभु जी के लीलावसान के बाद अमृतसर का एक ब्राह्मण जगन्नाथ वैष्णव देवी के दर्शन करने जा रहा था। जाते–जाते वह पहाड़ पर किसी गड्ढे में गिर गया उसने किसी योगी के बारे में सुन रखा था। कि वहाँ आसपास में बहुत बड़े योगी रहते हैं जगन्नाथ की प्रभु जी में श्रद्धा नहीं थी। वे उन्हें ढोंगी ही मानता था कहता था जैसे ब्राह्मण ये वैसे हम हम में उनमें क्या फर्क है? किन्तु जिस समय वह उस गड्डे में गिर गया तो उसके मन में धारणा आई कि यदि प्रभु जी शक्तिमान हैं तो ऐसी कृपा करें कि योगी के दर्शन हो जायें। उसके मन में ऐसे विचार आते ही योगी सामने आ गये। क्यों? क्यों खड़ा है यहाँ पर? वह कहने लगा–महाराज! मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। योगी कहने लगे–तू मूर्ख है! सूरज को छोड़कर दीपक के पास आया है? वह ब्राह्मण कहने लगा–महाराज! कौन सूरज और कौन दीपक मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। महाराज ने कहा–सूरज तो वे जिनसे तू हाथ जोड़ जोड़कर प्रार्थना कर रहा था कि ऐसी कृपा करें मुझे योगी के दर्शन हो जायें–मैं दीपक हूँ उनका ही बच्चा हूँ। इसके बाद वे महात्मा उस ब्राह्मण को अपनी गुफा में ले गये–जगन्नाथ ने देखा– गुफा में बड़ा प्रकाश हो रहा है वहाँ श्री प्रभु जी का बड़ा चित्र है। चित्र पूजित है आरती की ज्योति जल रही है। गुफा के बहुत भारी प्रकाश को देखकर ब्राह्मण कहने लगा–महाराज! यहाँ पर यह इतना प्रकाश कहाँ से आ रहा है? महात्मा ने कहा–यह उन्हीं की कृपा की लाईट है। ब्राह्मण ने पूछा–महाराज–उनका यह चित्र आपके पास यहाँ पहाड़ में कैसे आया? महात्मा ने एक घटना बतलाई। वह कहने लगा–देखो, एक बार श्री प्रभु जी ने एकान्तवास शुरू कर दिया था, उनकी दाढ़ी काफी बढ़ गई थी उनका विचार था कि वह नेपाल को चले जायें, उस समय बहुत से योगी उनसे प्रार्थना करने के लिये जाते थे कि प्रभुजी अभी आप नेपाल को न जायें अभी आपने अपने बच्चों का उद्धार करना है। योगियों में मैं भी था। मैं उनके पास उस कोठी में मिलने गया था। पं. जगन्नाथ ने पूछा–महाराज–आप कौन सी कोठी में गये थे–महात्माजी ने कहा– रेलवे स्टेशन के पास एक बड़ी सी कोठी में प्रभु जी एकान्तवास कर रहे थे। वहाँ हम लोग गये थे। वह कोठी ला. चुन्नी लाल की कोठी थी। यह चित्र मैंने वहाँ कोठी में देखा था–उस समय मैंने कुछ नहीं कहा किन्तु मेरे मन में भावना बनी कि प्रभु जी यह चित्र मुझे दे दें। किन्तु मैंने उनसे कुछ नहीं कहा–ऐसी भावना को लेकर मैं वापिस आ गया, यहाँ गुफा में आने पर भी मेरी यह भावना बनी ही रही कि चित्र हमें मिल जाता तो अच्छा था। एक दिन प्रभु जी ने वहीं से ही उठाकर यह चित्र हमें दे दिया था। यह श्री प्रभु जी का दिया हुआ चित्र है इसका हम पूजन करते हैं। इन्हीं का प्रकाश इस गुफा में है। मेरे कहने का अभिप्राय यह–**'ततः प्रातिभश्रावण वेदनादर्शास्वाद वार्ता जायन्ते'** यह योग दर्शन का सूत्र है इसका अर्थ यह है कि योगी को

पहले प्रातिभ ज्ञान होता है प्रातिभ ज्ञान होने पर योगी को सत्यानुभूति होती है। मन के अन्दर कोई कुसंकल्प आता ही नहीं। जो वर्तमान में होने वाला है वही संकल्प आता है। प्रातिभ ज्ञान के बाद यदि योगी उस घटना को देखना चाहे तो देख भी लेता है। उपनिषदों में जहाँ हम ब्रह्मलोक का वर्णन पढ़ते हैं वहाँ पर इस प्रकार की बातें आती है जैसे कल परसों मैं अपने व्याख्यान में देवलोक में रहने वाले की शक्ति का वर्णन कर रहा था–उनमें शक्ति विशेष हुआ करती है। जैसे हमारे मनुष्य लोक में पक्षियों को स्वाभाव से ही आकाश गमन होता है किन्तु मनुष्य नहीं उड़ सकता। क्योंकि मनुष्य के अन्दर यह ताकत है नहीं मनुष्य यदि आकाश में उड़ना चाहेगा तो उसके लिये आवश्यक है समाधि लगाये संयम करे उसके बाद आकाश में उड़ने की ताकत आ जायेगी। **'कायाकाशयोः सम्बन्ध संयमात्लघुतूल समापत्तेश्चाकाश गमनम्''** शरीर और आकाश के सम्बन्ध में जब योगी संयम करता है तो शरीर रूई के मानिन्द हल्का हो जाता है और धीरे–धीरे आकाश में उड़ने लगता है। किन्तु पक्षियों को यह शक्ति स्वभाव से प्राप्त है इसी प्रकार से देवलोक के जो देवता है उनके अन्दर आकाश गमन करना, दूर का देखना, दूर का सुनना वरदान व अभिशाप देना आदि ताकतें स्वभाविक हुआ करती हैं और वहाँ बुढ़ापा और मौत वगैरह नहीं आती। उन्हें बुढ़ापा नहीं आता और प्राण हमारी तरह नहीं छोड़ते उनके शरीर पुण्य क्षीण होने के साथ–साथ अपने आप घटते रहते हैं। एकदम दिव्य आत्म तेज के द्वारा दूसरी जगह ले लेते हैं। मैं अभी तुम्हें इन देवलोक से आगे ब्रह्मलोक के देवताओं के बारे में बता रहा था। वहाँ के आत्माओं में योगियों वाली विशेष शक्ति स्वाभाविक होती है। वहाँ के देवता ब्रह्माण्ड में कहीं की भी बात सुनना चाहें तो **श्रृण्वन श्रोतम् भवति'** इच्छा मात्र से उनके कान हो जाते हैं। मनुष्य लोक में हमें एक दूसरे की बात को सुनने के लिये कान लगाना पड़ता है इस प्रकार से थोड़ी दूर की आवाज को ही हम सुन पाते हैं। ब्रह्मलोक के देवताओं के मन में आया हम सुन लें तो **श्रृण्वन् श्रोतम् भवति।** यदि ब्रह्मलोक के किसी आत्मा को ख्याल आया कि मैं मनुष्य लोक के अपने अमुक व्यक्ति की बात सुनूँ तो सुनने की भावना मात्र से कहीं भी कोई भी शब्द हो सुन लेता है वे तेजस जीव होते हैं तेज में विलीन रहा करते हैं। सुनना चाहते हैं तो सुन लेते हैं। **पश्यन् चक्षुः भवति'** देखना चाहें तो आँखें हो जाती हैं। हम लोगों को आँखों से एक तरफ की दिखाई देती है जिधर आँखें हैं पीछे की वस्तु को देखना हो तो पीछे मुड़ने पर ही दिखाई देगी वह भी एक सीमित दूरी तक। हमारी नेत्र की शक्ति आँखों के गोलक के दायरे में है। किन्तु ब्रह्मलोक के वासियों को ऐसा नहीं करना पड़ता। वहाँ गोलकों की आवश्यकता नहीं पड़ती, सुनना चाहते हैं, कान हो जाते हैं **स्पर्शन् त्वग् भवति'** किसी को छूना चाहें तो छू लेते हैं। उनमें विकरण भाव होता है। बिना इन्द्रियों के सब काम कर लेते हैं। वे प्रकृतिलीन से ऊपर

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

है व एक दिव्य तेज में फिरा करते हैं। दिव्य तेज में ही सुनने, देखने, छूने आदि की इच्छा होते ही सब कार्य हो जाते हैं। योगियो के अन्दर यह शक्ति योग ध्यान के द्वारा स्वतः प्राप्त हुआ करती है। मुझे एक घटना और याद आई जो इस सिद्धान्त को और स्पष्ट करने वाली है। श्री प्रभु जी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान रहा करते थे। उनके चरण कमलों में एक महात्मा आया उसने उनसे योग दीक्षा ग्रहण की। कैसे ग्रहण की, यह बात मैं तुम्हें बताऊँ। श्री प्रभु जी शाम को गंगा किनारे घूमने जाया करते थे। मैं भी उनके साथ होता था। वहाँ गंगा किनारे पत्थर पर एक महात्मा बैठा रहता था माला तुलसी की रखता था और भजन में बैठा रहा करता था। श्री प्रभु जी ने उस महात्मा को गौर से देखा और आगे चल पड़े। जो साथ में समझदार थे वे कहने लगे कि हाँ प्रभु जी ने इस पर तो कुछ कृपा कर दी। दूसरे दिन फिर प्रभु जी वहाँ गये। उस दिन वह महात्मा निस्तब्ध बैठा था–दो तीन दिन के बाद वे महात्मा अपने आप आश्रम में आया और योग दीक्षा प्राप्त की। योग दीक्षा प्राप्त करने के बाद उसका योग ध्यान चलने लगा। उसने श्री प्रभु जी से एक सवाल किया कि प्रभु जी ऐसी कृपायें आप उन्हीं पर करते हैं जो आप से दीक्षा लेते है या और भी लोगों पर दूसरी जगह भी करते हैं। श्री प्रभु हँस पड़े कहने लगे–वे सर्वशक्तिमान प्रभु सब पर सभी जगह करते हैं। वह कहने लगा। मैंने आप की कृपा अनुभव तो गंगा किनारे कर लिया था किन्तु दीक्षा के बाद ध्यान की स्थिति ऊँची हो गई है तो प्रभु जी आप यह बताये दूसरी जगह आप कैसे करते हैं? वे श्री कृष्ण में प्रेम रखता था। श्री प्रभु जी कहने लगे–जा, मथुरा वृन्दावन चला जा वहाँ पर अपने इष्ट देव का ध्यान करते रहना, वहाँ तुम्हें इन बातों का जवाब अपने आप मिल जायेगा बेकार क्यों मेरा कान खाया करता है। श्री प्रभु जी की आज्ञा पाकर वह वृन्दावन चला गया। वहाँ जाकर गाजीपुर में बरसाना नन्द गांव के बीच में प्रेम सरोवर में रहा–वहाँ पास में राधा गोविन्द जी का मन्दिर है वहाँ जाकर के वह महात्मा रहा। आजकल तो प्रेम सरोवर में बहुत परिवर्तन हो गया। उस प्रेम सरोवर में वह महात्मा रात को घूमा करता था। और प्रभुजी की कृपाओं का अनुभवकिया करता था। वहीं पर प्रभु जी ने उसे अनुभव करा दिया कि श्री प्रभु जी कहीं पर भी किसी पर भी कृपा कर सकते हैं। इसलिए सर्वशक्तिमान गुरुदेव श्री प्रभु जी के अभय चरणों को पाकर अपने को ध्यानी–योगी बना लो तभी देह धरे का फल मिलेगा। बार–बार आशीर्वाद।

सम्पादकीय–

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 109 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

—आचार्य (डॉ.) दासलाल जी महाराज

कभी–कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्भाव' युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथा भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त में एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं तो युगों–युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गाँव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृतान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणी–धाम' में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार की बाल–लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4–5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब में लाहौर में आचार्य विश्व–बन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही

विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी इन्हें बार–बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरुढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अतः हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्‌भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वतः होने लगीं। ध्यान की ऊँची–ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगी। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठा करने में रुचि नही रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुतः अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। उर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलतः श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वतः ही खींच लेते हैं, अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे–धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्‌गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाता है। उसे अब सब कुछ मिल गया। 'भक्ति–मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नमः' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18–20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगद्धत्ता के प्रसंग में

आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था—तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी है अतः तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवाई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगीं। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिंह दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधना रत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने लगे तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा—"मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्‌गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये व सिखाये जाते थे। आज भी वही परम्परा चल रही है। **'सन्तु सन्तु निरामयाः'** की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी

अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना–सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बताकर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट–कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे–यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।''

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिए आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। **'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्'** कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्वबन्द्य होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म–साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

स्त्रियों के लिए गुरुदेव के उदात्त विचार–

स्त्रियों के विषय में आमतौर पर जनता में इस प्रकार का विचार है कि उनको किसी गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। उसका पति ही उसका गुरु होता है। इसके अतिरिक्त और किसी से दीक्षा प्राप्त करना उपयुक्त नहीं है। लोगों की यह भावना केवल मात्र कपोल–कल्पित ही मालूम पड़ती है। हमारे प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के बहुत से उपाख्यान हैं जिसमें यह भली प्रकार से साबित हो जाता है कि स्त्रियों को अपने कल्याण के लिए यदि सामर्थ्यवान गुरुदेव मिल जाये तो आध्यात्म विकास हेतु दीक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियों के शरीर में और पुरुषों के शरीर में अन्तर ही क्या है? हाड़–माँस और चर्म आदि के द्वारा प्रकृति से एक पुतला निर्मित हुआ। लिंग भेद से हम उसे स्त्री कह दें या पुरुष कह दें। यह तो केवल मात्र मन की विडम्बना है। वस्तुतः स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं।

आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक। केवल मात्र एक अमर ज्योति के रूप में विशुद्ध प्रकाश है जो हर शरीर को अपना अधिष्ठान बना करके चमकता रहता है। लिंग भेद से जिन नामों द्वारा उसको अभिव्यक्त किया जाता है उन्हीं नामों से वह व्यावहारिक होता रहता है। यदि उसको स्त्री कहा जाता है तो उसके लिए स्त्री लिंग के शब्दों का प्रयोग होता है और पुरुष कहा जाता है तो पुल्लिंग वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। तत्वतः पुरुषों के अन्दर जो चेतना शक्ति है वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुषों के अन्दर जो मनन करने की शक्ति है, वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुष जिस प्रकार से गन्ध ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी गन्ध ग्रहण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार से अपने आपको स्वतन्त्रतापूर्वक सुखी रखना चाहता है, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी अपने आपको सुखी रखना चाहती हैं। जब स्त्रियों का खाना–पीना, सोना–बैठना, बोलना–चालना सब कुछ पुरुषों के समान ही है तो पुरुषों के समान अध्यात्म चिन्तन क्यों नहीं कर सकतीं? क्या उनको आत्मोत्थान का अधिकार नहीं है, क्या वे लोग पुरुषों के समान ही आध्यात्मिक क्षेत्र में आकर अपने आप को पूर्णरूपेण विकसित नहीं कर सकतीं? अवश्य कर सकती हैं आसन, बन्ध, मुद्रायें क्यों नहीं कर सकतीं? क्या उन लोगों को बिना शिक्षा के अध्यात्म विद्या प्राप्त हो जायेगी और क्या वे उत्थान कर सकेंगी? यद्यपि स्त्रियों को पूर्णरूपेण पतिव्रता और पुरुषों को पत्नीव्रत होना ही चाहिए, तभी गृहस्थ में पारस्परिक सुख हो सकता है अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु पतिव्रत पालन में गुरुदेव बाधक नहीं होते, प्रत्युत पूर्णरूपेण सहायक रहते हैं क्योंकि गुरुदेव का स्वरूप मनुष्य के विकृत मन के अन्दर शुद्ध सात्विक प्रकाश को झिलमिला देता है।

इस प्रकार से मातृ–शक्ति के प्रति गुरुदेव का बड़ा ऊँचा भाव था। और प्रायः कहा करते थे **''यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''**।

करुणामूर्ति श्री गुरुदेव का 109 वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम सहित उनके अन्य आश्रमों में भी विजया दशमी पर्व बड़े धूम–धाम से मनाया जा रहा है। इस पावन बेला पर गुरुदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि–कोटि नमन है।

इस पावन अवसर पर मैं सभी गुरु भाई–बहिनों को हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ देता हूँ।

॥ ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

पिछले लेख में आपने बालकृष्ण द्वारा मुर्तिमन्त पाप रूप अघासुर का वध करना तथा बालकृष्ण का सखा ग्वाल बालों के साथ क्रीड़ा देख मोहित हुये ब्रह्मा जी के करतूतों को पढ़ा। यहाँ एक प्रकरण काल के सम्बन्ध में विचारणीय है। पाँचवे वर्ष में घटित घटना का विवरण ग्वाल बालों द्वारा छठे वर्ष में बताया जाना। क्योंकि ग्वाल बाल बछड़े सहित एक वर्ष तक ब्रह्मा जी के माया बन्ध में पड़े रहे थे। ग्वाल बालों को भगवान की माया प्रभाव से वह काल एक क्षण सा प्रतीत हुआ था। उन्हें यह बोध नहीं था कि एक वर्ष व्यतीत हो चुका था।

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तराऽऽत्मनः।
कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः॥43॥

अ. 14 स्क. 10 पूर्वार्ध

हम सभी जानते हैं कि बाह्य काल दो घटनाओं का अन्तराल है जिसे हमारा मन अनुभव करता है। सुख के समय का बोध एवं दुःख के समान समय का बोध में बड़ा अन्तर होता है। सुख का समय लगता है बहुत जल्द बीत गया। वहीं दुःख वाला समय पहाड़ बन जाता है।

इसके पीछे रहस्य है, हमारे मन की एकाग्रता। सुख में राग होने से हमारा मन, उसमें एकाग्र होता है और दुःख में मन विचलित रहता है।

इस समय बहुत सी स्वानुभूत तथा श्री गुरुदेव भगवान से शक्तिपातित गुरुभाई बहनों के अनुभव स्मरण में आ रहे हैं। कुछ को यहाँ प्रकट करना समीचीन होगा। एकाग्रता में समय बोध का घटना तथा चंचलता में समय बोध का दीर्घ होना सभी अनुभव करते हैं।

कई स्थलों पर योग-प्रचार करते हुये श्री सद्गुरु भगवान के सानिध्य में कई भाई-बहनों को गहरी सम्प्रज्ञात समाधि के अनुभव में दस-दस बारह घण्टे एक ही स्थिति में ध्यानस्थ बैठे देखा गया। बड़ी-बड़ी अनुभूतियाँ उन्हें होती। परन्तु जब श्री प्रभुजी उन्हें बलात बहिर्मुख कर देते तो कुछ यह कहते प्रभो। जिस आनन्द में मैं था उसमें ही रहने देते अभी तो देखें आरती की ज्योति जल रही है। कुछ ही पल तो बीता है। परन्तु यथार्थता यह था कि प्रातः आरती में ध्यानस्थ अमुक का ध्यान जब रात्रि आरती के पश्चात् श्री गुरुदेव खोलते थे तो

उसे लगता था कि अभी–अभी तो आरती की ज्योति जगी है जबकी दस बारह घण्टे व्यतीत हो चुके होते थे।

गहन समाधि में काल स्थिर हो जाता है। श्री गुरुदेव भगवान प्रवचनों में राजस्थान के किसी स्थान पर सड़क निर्माण हेतु पहाड़ियों के ध्वस्तीकरण का कार्य होने की बात बताते हुये बोले कि एक दिन पहाड़ तोड़ते हुये एक खोह में जटा–जूट मंडित दीर्घकाय महात्मा खनन कार्य करने वालों को दिखे। वे महात्मा महाभारत काल से समाधि में थे। उन्हे वर्तमान कलिकाल के अति साधारण लोगों को देख ख्याल आया यह तो बहुत काल व्यतीत हो गया है। वे अपने योग बल से अन्यत्र प्रस्थान कर गये। अतः श्रीकृष्ण सखाओं को काल का बोध एक क्षण प्रतीत होना, जबकि वर्ष व्यतीत हो गया था, मात्र समाहित चित्त का ही परिणाम गोचर होता है।

अस्तु! अब आगे पंद्रहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा धेनुकासुर का उद्धार एवं अपने योगैश्वर्य से मृत ग्वाल बालों को पुनः जीवन दान करने की कथा संक्षेप में कही जायेगी। छठे वर्ष में भगवान को गायों को चारण हेतु, बड़ों की आज्ञा मिल गयी। अनुपम् शोभा युक्त वृन्दावन में सखाओं के साथ क्रीड़ा करते हुये गौ चारण हेतु जाने लगे।

एक दिन श्रीकृष्ण सखाओं में प्रधान गोप बालक श्री दामा एवं सुबल ने श्याम एवं राम से बोले—हे दुष्टों को खेल–खेल में मारने वाले मनमोहन यहाँ से थोड़ी दूर पर एक बड़ा भारी ताड़ बन है वहाँ पके ताड़ फल बहुत से गिरे रहते हैं। परन्तु वहाँ धेनुक नाम का असुर गधे के रूप में रहता है। उसके समान बलवान साथी भी रहते हैं। अब तक वे सब न जाने कितने मनुष्यों को खा डाला है। श्रीकृष्ण! उन ताड़ फलों के सुगन्ध देखो यहाँ तक मन्द–मन्द फैल रही है। तुम हमें वे फल अवश्य खिलाओ। दाऊ दादा! हमें उन फलों को खाने की बड़ी लालसा हो रही है।

भगवान श्रीकृष्ण एवं बलराम जी दोनों हँस पड़े और बोले, चलो ताड़ बन चलें। बन में पहुँच कर बलराम जी ने अपने हाथों में ताड़ का पेड़ पकड़कर झकझोर दिया। देखते–देखते जमीन पके फलों से पट गया। गधे के रूप में रहने वाला धेनुका फलों के गिरने की आवाज को सुनकर दौड़ा आया और तीव्रता से आकर अपने पिछले पैरों से बलराम जी के छाती में दोलत्ती मारी। पुनः दुबारा हट कर दोलत्ती झाड़ने के लिये जब पिछले दो पैर उठाया, बलराम जी एक ही हाथ से उसके दोनों पैरों को पकड़ कर उसे आकाश में चक्कर घिन्नि दे ताड़ के पेड़ पर पटक दिया। असुर के प्राण तो घुमाते समय ही निकल गये थे। धेनुका–सुर के मारे जाने पर उसके भाई–बन्धु अति क्रोध में श्रीकृष्ण–बलराम पर टूट पड़े।

खेल-खेल में भगवान ने उन सबों को मार कर उद्धार किया। वह ताल वन अब सबके लिये सुगम और निरापद हो गया।

भगवान वृन्दावन में अनेक लीलाएँ करते हैं। होनहार वश, एक जेठ-आषाढ़ के तपन से त्रस्त ग्वाल-बाल गौओं सहित यमुना जी का विषैला जल पीकर प्राणहीन हो गये। उनकी ऐसी अवस्था देखकर योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अमृत बरसाने वाली दृष्टि से उन्हें जीवित कर दिया क्योंकि उनके प्राण-धन तो श्री कृष्ण ही थे-

वीक्ष्य तान् वै तथा भूतान कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।
ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथन् समजीवयत्।।50।।

अ. 15 स्क. 10 पूर्वार्ध

श्री शुकदेव जी कहते हैं-परीक्षित्! चेतना आने पर वे सब यमुना तट पर उठ खड़े हुये और आश्चर्य से एक-दूसरे को देखने लगे। वे समझ गये कि श्रीकृष्ण ने ही हमें फिर जीवित कर दिया है।

- जो ईमानदारी, सत्य तथा परहितयुक्त कमाई का हो-वह पैसा शुद्ध है।
- जिसमें सम्मान, सत्य तथा हित भरा हो-ऐसा बर्ताव शुद्ध है।
- जिसमें निज सुख वासना का त्याग एवं प्रेमास्पद को सुखी बनाने की एकान्त इच्छा और क्रिया सहज हो-वह प्रेम शुद्ध है।
- जिस सेवा के बदले में निष्काम सेवा की वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती हो वह सेवा शुद्ध है।
- जिस व्यापार में हिंसा, पर अहित, चोरी आदि न होकर केवल आजीविका निर्वाहार्थ सत्यता हो-वह व्यापार शुद्ध है।

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

विप्रादि दर्शनम् नमामी नमामी

जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर दादा गुरु श्री राम लाल जी महाराज एवं हृदय सम्राट सिद्ध योगाधिपति प्रतिपल स्मरणीय गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने शिष्यों पर ही नहीं अपितु अपने प्रशिष्यों पर भी यौगिक विभूतियों को अपने कर कमलों से लुटाते ही रहते हैं। इसी प्रकार का एक दिव्य प्रसंग मध्य प्रदेश राज्य के अन्तर्गत मुरैना निवासी 62 वर्षीय आदरणीय गुरुभाई श्री प्रेम सिंह परमार ने सुनाया। कृपा प्रसंग का प्रसार करने से पहिले, मुरैना नाम सुन कर मुझे एक विलक्षण घटना याद आ रही है, जो आपसे साझा करने में अतिशयोक्ति न होगी।

यह कारुणिक घटना सन् 1989 के जून माह की है। गुरु देव की प्रिय नगरी मुरैना में हमारे 150–200 गुरुभाई बहिन रहते हैं। गुरुजी के कृपा पात्र मुरैना मण्डल के अनुरोध पर विश्व नियन्ता जी ने मुरैना की पंचायती धर्मशाला में त्रिदिवसीय योग प्रचार कार्य क्रम के वार्षिक आयोजन की सहर्ष स्वीकृति प्रदान की थी। दैनिक कार्य क्रमानुसार एक प्रातः मंगला आरती, दो अध्याय गीता पाठ, यौगिक प्रवचन, जीवन तत्व साधन, रोग निवारण एवं शंका समाधान के पश्चात् सर्वसिद्ध शक्तिदाता गुरु देव भगवान श्री चन्द्र मोहन जी महाराज, महा प्रभू श्री रामलाल जी महाराज के चमचमाते अलौकिक दरबार के साथ अपने भव्य आसन पर अर्ध पद्मासन में विराजमान थे। श्री गुरु देव जी का मुख मण्डल आध्यात्मिक तेज से ओतप्रोत था। मनोहारी पण्डाल में गुरु जी के पार्षदों, साधकों, गुरु भाईयों एवं अन्य श्रद्धालुओं की चहल पहल अवर्णनीय थी। इसी तारतम्य के मध्य एक विलक्षण घटना जीवन में पहली बार उपस्थित जनों को खुली आंखों से देखने को मिली। बात ऐसे हुई कि—

इस भाग्यशाली नगरी के एक डॉ. साहिब, जिनका नाम श्री कमलेश है एवं उनकी धर्मपत्नि का नाम श्रीमति बीना है, अपनी एक बीमार, बेहोश, मृतप्रायः लड़की को लेकर इस चकाचौंध पण्डाल में अकारण दयालु–अनाथ नाथ जी की शरण में आए। यह दम्पत्ति अच्छे से अच्छे डॉक्टरों से हार मान कर लड़की को राम भरोसे छोड़ चुके थे। लड़की के पिता जो स्वयं भी मान्यवर डॉक्टरों की श्रेणी में गिने जाते हैं, हताश एवं निराश थे। अन्तिम सांसें गिन रही इस लड़की को श्री गुरु देव भगवान के सामने लाया गया औपचारिक वार्तालाप के

पश्चात् संकट मोचक जी ने लड़की को अपने अति समीप कराकर उसका सिर सहलाना आरम्भ किए। पण्डाल की गहमा गहमी से अनभिज्ञ की भाँति सिद्ध योगाधिपति जी देर तक लड़की का सिर सहलाते रहे। न जाने कितनी आँखें यह दृश्य देख कर मन ही मन भाँति–भाँति के कयास लगाये जा रही थी।

आश्चर्य! महान आश्चर्य! कि लड़की की लक्ष्मण मूर्छा टूटी और अपनी दोनों आँखें खोल दीं। हाथ पैरों में गति हुई। मुख से भी कोई हूँ–हूँकार जैसा शब्द उभरा .....। सभी के चेहरे चमक उठे। प्राणदाता गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज मृत प्रायः लड़की को प्राणदान दे चुके थे। आराध्य देव जी की अहेतुकी कृपा को कौन समझ सकता है? न कोई औषधि, न कोई इंजेक्शन, न कोई टेस्ट, न कोई एक्स–रे और न कोई अन्य उपचार। कितने भाग्यशाली हैं हम और आप, और यह डॉ. परिवार। लंका में श्री लक्ष्मण भैय्या की मूर्छा टूटने पर जो हर्ष–उल्लास रामजी के खेमे में पसरा होगा, यहाँ गुरु दरबार में भी उतना या उससे कहीं अधिक हर्ष–उल्लास हुआ था। बोलिए–

सिद्धों के सरदार की जय

किसी की आँखें बोली, किसी का बोला चेहरा।
डॉ. साहब ने सपना देखा कैसे हुआ सवेरा।।
देखे कितने आला डॉक्टर, देखे कितने स्याने।
जो देखा यहाँ आ कर, गुरु की बात गुरु ही जाने।।

आइए, अब हम अपने मूल प्रसंग पर लौटते हैं। परमार जी ने बतलाया कि मैंने छः अप्रैल 1994 को श्री मुन्ना वाजपेई जी महाराज से मुरैना में ही दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। मेरे पूज्य गुरु देव जी ने लगभग एक माह तक यहीं मुरैना में रह कर अपने गुरुदेव अर्थात् मेरे दादा गुरु अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं बड़े दादा गुरु योग योगेश्वर महासिद्ध प्रभू राम लाल जी महाराज द्वारा सिखलाई गई, बतलाई गई, की गई एवं देखी गई क्रिया लीलाओं को कूट–कूट कर मेरे जहन में उतार दिया था। गुरु जी मुझे अकाट्य सत्य से अवगत कराया करते थे कि गुरु महिमा इतनी विशाल है कि यह सहज में हमारी बुद्धि में नहीं आती, फिर भी गुरु देव का चरित्र माखन जैसा कोमल कहा गया है। क्योंकि सिद्ध गुरुदेव जी अपनी व्यापक शक्ति से शिष्य के कारण शरीर में जब तक निवास करते हैं जब तक उसे मुक्ति न हो जाए। गुरु देव के मन में मन, बुद्धि में बुद्धि मिला लेने से शिष्य पर शक्तिपात होने लगता है। अगर शिष्य तप करने लग जाए तो उसको कायक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जैसी भक्ति ईश्वर में है, वैसी ही गुरु में हो तो शिष्य की

गुरु के प्रति समर्पण की पराकाष्ठा कहलाती है। गुरु तत्व से आगे और कोई तत्व नहीं है। (यह परब्रह्म तत्व अथवा परम तत्व अथवा सद्गुरु तत्व के नाम से भी जाना जाता है) यह भगवान सदा शिव का आदेश है। क्योंकि सद्गुरु सत्ता में सभी देवी–देवताओं का समावेश होता है। गुरु मन्त्र से कर्म संस्कारों को काटने का एकमात्र उपाय ध्यान योग ही है ...... इत्यादि।

ध्यानी बन कर ध्यान करे, साधन करे हजार।
श्री सद्गुरु कृपा बिना, सब कुछ है बेकार।।

इसके अतिरिक्त दिव्य आरती, गीतापाठ, जीवनतत्व साधन, अष्टांग योग, कुण्डलिनी शक्ति, नेति, भजन संकीर्तन, और गुरू मन्त्र आदि पर ही हमारी दिनचर्या रहती थी। संकीर्तन के नाम पर अपने पुण्यों का भण्डार भरने के लिए मेरे गुरु देव जो इस समय प्रभू ज्योति में विलीन हैं, अधिकतर यही गाते रहने की आज्ञा देते थे कि–

गोविन्द जय जय–गोपाल जय जय।
बाँके बिहारी प्रभू–रामलाल जय जय।।

यह कर्म भूमि ही परलोक की खेती है अतः मुझे ऐसी खुमारी चढ़ी कि गुरु कृपा से मेरी भक्ति का अंकुर फूट पड़ा और गुरू मन्त्र तो प्रातः सायं करता ही हूँ, दिन में भी चलते–फिरते, उठते–बैठते उक्त संकीर्तन करते रहने का जुनून मेरे स्वासों से जुड़ गया। और एक दिन–

मेरे भाग्य ने पलटा खाया।
दिन राम मिलन का आया।

हुआ यूँ कि बात सन् 1999 की है। मैं सीधा लेट कर ध्यान मग्न हो रहा था कि ध्यान में मैंने त्र्यम्बक महादेव के शिवलिंग पर जलाभिषेक किया, फिर सफेद–सफेद गौ रस चढ़ाया, मंत्र–पुष्प–फल चढ़ाए, चन्दन तिलक लगाया, धूप–दीप .... इयादि से जी भर कर भोले बाबा की पूजा–अर्चना की। चमत्कार, महान चमत्कार!, देखते ही देखते शिवलिंग से प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। उस दूध जैसे प्रकाश में आशुतोष भगवान शिव के दर्शन हुए, फिर यकायक जगत नियन्ता ब्रह्माण्ड नायक प्रभू श्री रामलाल जी महाराज के विप्र वेशभूषा में दर्शन हुए जो धोती–कुर्ता पहने सिर पर पगड़ी बाँधे थे। जैसा कि मेरे गुरुदेव श्री लज्जाराम वाजपेई जी बतलाया करते थे कि योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज को अमृतसर के निकट एक गांव जिसका नाम गुरु का जडियाला है, के शिवालय में घोरतम अनुष्ठान के समय इन्हीं तेजोमय पगड़ीधारी महापुरुष के सर्व प्रथम स्वप्न में दर्शन मिले थे।

देवालय में गुरु देव ने अनुष्ठान किया।
सपने में देखा यूँ कूएँ पै कौन खड़ा।।

इसके पश्चात् देखते ही देखते इन विप्र देव महाराज के स्थान पर अखिल आत्मा श्री कृष्णा भगवान के दर्शन पा कर मैं प्रेम विभोर हो गया। फिर उस सफेद–सफेद रोशनी में इतनी चमक बढ़ गई जैसे कई सूर्य नारायण एक साथ उदय हो गये हों। मेरी अखियाँ चौंधा गई कुछ दिखाई नहीं पड़ा। हाँ, कान में बाँके बिहारी जी की सरस बन्शी ध्वनि सुनाई पड़ी तो हाय रे मैं बलिहारी जांवां, बन्शी तान सुनते–सुनते मैं वारी–वारी जांवां रे ...... मेरा ध्यान टूट गया। अब भी ऐसा लगता है जैसे कि यह अभी की ताजी घटना है।

आप भी गाईए–

गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।
बाँके बिहारी, प्रभू राम लाल जय जय।।
गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय।।
गोविन्द जय जय, गोपाल जय जय।
प्रभू रामलाल जय–जय, गुरू चन्द्रमोहन जय–जय।।
जय गुरू देव

आयु–नाश के छः दोष

अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, स्वार्थ, और मित्र–द्रोह यह छः तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को काटती हैं। जो संसार में अधिक जीना चाहते हैं उन्हें इन छः दोषों से बचना चाहिए।

–महात्मा विदुर

योग और कर्म

(श्री सूर्यप्रसाद उपाध्याय)

'कर्म क्षेत्रं इदं जगत्, ऐसा प्रायः कहा जाता है, अर्थात् यह संसार कर्म क्षेत्र है। मानव मात्र कर्म करने हेतु ही शरीर धारण कर जगत में आता है। 'जगत' की परिभाषा भी विद्वानों ने बतलाई है—'गन्तु शीलं इति जगत्' अर्थात् जगत् नाम चलने का द्योतक है। इसी का स्पष्टीकरण महात्मा तुलसीदास जी ने भी अपने राम–चरित मानस में किया है—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।।

इस गमन शील संसार में मनुष्य आकर जैसा कर्म करता है वैसा फल भी उसे प्राप्त होता है। यही किया हुआ कर्म जन्मान्तर में प्रारब्ध माना जाता है। जिसे दैवज्ञों ने 'कर्म', की संज्ञा दी है, यथा—जन्म के समय ही ज्योतिषी पण्डित इत्यादि पञ्चाङ्ग देखकर बतला देते हैं कि यह बालक बड़ा ही भाग्यवान है, आदि–आदि। यही उस शिशु का पूर्व जन्म का किया हुआ कर्म होता है, जो वर्तमान में 'प्रारब्ध' कहा जाता है। योगिराज भर्तृहरि ने भी अपने नीति–शतक में लिखा है—

'यत्पूर्व विधिना ललाट पट लिखिते तन्मार्जितु कः क्षमः।' अर्थात् पूर्व जन्म–कृत कर्मों का फल मनुष्य के भाग्य पटल में जो ब्रह्मा ने लिख दिया है उसे कौन मिटा सकता है।

इतने पर ही सन्तोष कर मनुष्य को हताश नहीं होना चाहिए। यह प्रारब्ध भी मेटा जा सकता है। प्रश्न उठता है वह कैसे? उत्तर मिलता है 'योग' द्वारा। पुनः प्रश्न खड़ा होता है योग की प्राप्ति होगी कैसे? उत्तर मिलता है—सद्गुरु से। सद्गुरु की प्राप्ति कैसे होगी? जन्म–जन्मान्तर के किये गये शुभ कर्मों से। कारण यही है कि बिना अपने शुभ संस्कार रहे सद्गुरु की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। अब यहाँ यही कहना पड़ता है कि यदि अपने पूर्व जन्म–कृत शुभ फलों के कारण सद्गुरु की उपलब्धि हो गयी तो 'गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया बिना कुछ सोचे समझे गुरु मुख के निकले वाक्यों को जनार्दन का वाक्य मानकर उसका पालन करना चाहिए। यदि साधक गुरु द्वारा बतलाये मार्ग पर चलता रहेगा, तो उसे सफलता अवश्य मिलेगी।

यहाँ प्रस्तुत विषय यह है कि 'योग में कर्म का क्या स्थान है—योग का एक सूत्र है

'क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः

अर्थात् जिन योगियों ने क्लेशों को निर्बीज समाधि द्वारा उखाड़ दिया है, उनके कर्म निष्काम अर्थात् वासना रहित केवल कर्त्तव्यमात्र रहते हैं इसलिए उनको इनका फल भोग्य नहीं है। जब चित्त में अनेक जन्मों के क्लेशों के संस्कार बने रहते हैं तब उनसे सकाम कर्म उत्पन्न होते हैं।

कर्म भी चार प्रकार के होते हैं–

(१) **कृष्ण**–पापरूप कर्म अर्थात् हिंसा आदि दूसरों को हानि पहुँचाने वाले, स्तेय, व्यभिचार आदि कर्म दुराचारी पुरुषों के होते हैं।

(२) **शुक्ल**–पुण्य कर्म अहिंसा आदि दूसरों को लाभ पहुँचाने वाले स्वाध्याय, तप, ध्यान धर्मात्माओं के होते हैं।

(३) **कृष्ण–शुक्ल**–(पाप–पुण्य मिश्रित कर्म) जिसमें किसी को लाभ किसी को हानि हो साधारण मनुष्यों के होते हैं।

(४) **अशुक्ल अकृष्ण**–न पुण्य न पाप अर्थात् फलों की वासना रहित–निष्काम शुद्ध कर्म।

इनमें से योगियों के कर्म अशुक्ल, अकृष्ण होते हैं, अर्थात् न पुण्य वाले न पाप वाले। पाप कर्म तो वे कभी करते ही नहीं। क्योंकि उनके लिए सर्वदा त्याज्य हैं, इस कारण उनके कर्म अकृष्ण हैं। शुक्ल कर्मों को निष्काम भाव से फलों को त्याग कर करते हैं इस कारण वे अशुक्ल होते हैं। साधारण मनुष्यों की तरह उनको कर्म में प्रवृत्त करने वाले अविद्या आदि क्लेश नहीं होते, बल्कि वे अपने आपको तथा अपने सब कर्मों और फलों को ईश्वर–समर्पण करके केवल उसकी आज्ञा–पालन से अपना कर्त्तव्य समझते हुए करते हैं। इस कारण वे वासना रहित हैं।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गत्यक्तवा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।
कायेन मनसा बुद्धया केवले रिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्तवात्म शुद्धये।।
युक्तः कर्मफलं त्यक्तवा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः काम कारेरण फले सक्तो निबध्यते।।

(गीता ५/१०–११–१२)

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण कर आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है,

वह पुरुष जल में कमल के पत्ते के सदृश पाप में लिप्यमान नहीं होता। निष्काम कर्मयोगी केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। निष्काम कर्मयोगी कर्मों के फलों को परमेश्वर को अर्पण करके परमात्मा प्राप्ति रूप शान्ती को प्राप्त होता है और सकामी पुरुष फलों में आसक्त हुआ कामना के द्वारा बँधता है।

ऊपर बताये हुए योगियों के अतिरिक्त साधारण मनुष्यों के तीन प्रकार के कर्मों का फल बताते हैं। उन तीन प्रकार के कर्मों से उनके फल के अनुकूल ही वासनाओं की अभिव्यक्ति होती है। योगियों से अतिरिक्त सकामी पुरुष फलों की वासना के कर्म करते हैं। जैसे कर्म होते हैं उनके फलों के अनुकूल गुणों वाली वासनायें होती हैं। उन वासनाओं से फिर वैसे ही कर्म और उनसे फिर उसी प्रकार की वासनायें बनती हैं। वासनायें चित्त में दो प्रकार के संस्कार रूप से होती हैं। एक स्मृति फलवाली, दूसरी जाति, आयु भोगफल वाली। जब कोई कर्म करता है तो उसके फल के अनुकूल ही सारी वासनाएँ प्रकट हो जाती हैं।

अब हम योगियों के निर्माण–चित्त के द्वारा होने वाले कर्मों पर विचार करते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने कहा है–'पञ्चविध निर्माण चित्त', जन्मौषधि मन्त्र तपः सभाधिजाः सिद्धय इति। जन्म, औषधि, मन्त्र, तप समाधि से उत्पन्न जो पाँच प्रकार के सिद्ध निर्माण चित्त हैं, उनमें जो ध्यान से उत्पन्न हुआ चित्त है वही वासना रहित है। उसमें ही रागादि प्रवृत्ति वासनाएँ नहीं होतीं। इस कारण क्लेश नष्ट होने से योगी का पुण्यपाप से सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे चार (जन्म, औषधि, मन्त्र और तप से उत्पन्न होने वाले सिद्ध निर्माण चित्तों) की तो कर्म और वासनायें विद्यमान रहती हैं। 'ध्यानजं समाधिजं यच्चित तत्पञ्चसुमध्येऽनाशयं कर्म वासना रहित'' (भोजवृत्तिः) ध्यानजं अर्थात् समाधि से उत्पन्न हुआ जो चित्त है वह उन पाँचों में अर्थात् कर्म की वासना और संस्कारों से रहित होता है यह अभिप्राय है।

पुनः तत्र ''ध्याजमनाशयम्''

जन्म औषधि–मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न जो पाँच प्रकार के सिद्ध निर्माण चित्त हैं, उनमें जो ध्यान (समाधि) से उत्पन्न हुआ चित्त है वही, वासना रहित है। उसमें ही रागादि प्रवृत्ति और वासनाएँ नहीं होती। इस कारण क्लेश नष्ट होने से योगी का पुण्य पाप से सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे चार (जन्म, औषधि, मन्त्र और तप से उत्पन्न होने वाले) सिद्ध निर्माण चित्तों की तो कर्म और वासनाएँ रहती हैं। (व्यासभाष्य)

जब योगी भी साधारण मनुष्यों की भाँति कर्म करते देखे जाते हैं तो उनके चित्त वासना–रहित किस प्रकार हो सकते हैं?

''कर्माशुक्ला कृष्ण योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्''

योगी का कर्म अशुक्लाकृष्ण (न शुक्ल, न कृष्ण अर्थात् निष्काम) होता है, दूसरों का तीन प्रकार का (पाप, पुण्य और पाप-पुण्य मिश्रित होता है।

अस्तु, मनुष्य को उसके कर्मों के अनुसार फल अवश्य भोगना पड़ता है। वही पूर्व जन्म कृत 'कर्म' वर्तमान में 'भाग्य' या प्रारब्ध कहा जाता है। यद्यपि यह अपने कर्मों के फल का विपाक ही है तथापि योगी अपने साधन द्वारा उस प्रारब्ध को मेंट या बदल सकता है।

इस हेतु साधक को निष्ठापूर्वक, गुरुवचनानुसार अनवरत अपने साधन-मार्ग में रत रहना अपेक्षित है।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

सभी गुरुभाई बहिनों को यह सूचित करते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि हमारे गुरुदेव भगवान् का 109वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम में 19 अक्टूबर शुक्रवार को बड़े धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर सभी गुरु भाई बहिन आमन्त्रित हैं।

आचार्य दासलाल जी महाराज

व्यवस्थापक

श्री सिद्ध गुफा सवांई, एत्मादपुर, आगरा।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि गुरुदेव के जन्मोत्सव के रूप में (बसहा) वाराणसी टोडरपुर स्थित श्री योगेश्वर चन्द्रमोहन योगाश्रम में 25 अक्टूबर से 28 अक्टूबर तक योग शिविर का आयोजन है। सभी गुरुभक्त इसमें शामिल होने की कृपा करें।

यह कार्यक्रम आचार्य डॉ. बाबलाल जी के संरक्षण में होगा।

योगेश्वर चन्द्रमोहन योगाश्रम समिति

टोडरपुर, वाराणसी

हंस विद्या का हंस-मंत्र महावाक्य ही है

(पं. मनोहरलालजी शर्मा एम. ए. गुरुभक्तरत्न, कलकत्ता)

योग बीज में लिखा है–

चित्तं पुनष्टं यदि भासते वै,
तत्र प्रतीतो गुरुतो पि नाशः।
न वा यदि स्यान्न तु तस्य शास्त्रं
नात्म प्रतीति र्न गुरुर्न मोक्षः।।

यदि चित्त नष्ट हुआ प्रतीत होता हो तो समझ लेना चाहिए कि वायु भी विजित हो गया है। जो इस प्रकार मानता हो तो समझ लेना कि उस मूर्ख का न तो कोई शास्त्र है, न उसे अनुभूति है, न उसका कोई गुरु और न उसके लिये मोक्ष है।

यत्र देशे वसेद् वायु–
श्चित्तं तद्वसति ध्रुवम्।।६९।।

--योगशिखोपनिषद

जहाँ प्राण निवास करता है निश्चय ही वहाँ मन भी निवास करता है। हठ प्रदीपिका में स्वात्माराम योगीन्द्र ने लिखा है–

पवनो बध्यते येन
मनस्तेनैव बध्यते।
मनश्च बध्यते येन
पवनस्तेन बध्यते।।२१।।
मनो यत्र विलीयते
पवनस्तत्र लीयते।
पवनो लीयते यत्र
मनस्तत्र विलीयते।।२३।।
दुग्धांबुवत्सं मिलितावुभौ तौ,

तुल्यक्रियौ मानस-मारु तौहि।

यतो मरुत्तत्र मनः प्रवृत्ति-

यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः।।२४।।

जो योगी प्राण बाँध लेता है वही योगी मन को भी बाँध लेता है। जिस आधार में मन लय होता है, पवन भी वहीं लय होता है। पवन जिस आधार में लय होता है, मन भी उसी अधार में लय होता है। दूध और जल की भांति मन और प्राण मिले हुये हैं। मन और प्राण की क्रिया समान हैं। जहाँ प्राण की प्रवृत्ति होती है अर्थात् जिन नाड़ी चक्रों में प्राण की प्रवृत्ति गति होती है, वहीं मन की भी प्रवृत्ति होती है। जिस स्थान में मन जाता है वहीं प्राण पहुँच जाता है। वसिष्ठ जी ने कहा है—

अविना भाविनी नित्यं

जन्तूनां प्राण चेतसी।

हे रामजी! प्राण और चित्त की अविनाभाव स्थिति है, अर्थात् ये एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते और अपने विनाश से मोक्ष रूप उत्तम कार्य करते हैं।

कुरुतश्च विनाशेन

कार्यं मोक्षाख्यमुत्तमम्।

यहाँ तक यह बताया कि प्राण नियमन से मन भी नियमित हो जाता है, मन नियमन का अर्थ मन का रजोगुण, तमोगुण से परिशोधन ही है।

योग चूड़ामणि उपनिषद् में लिखते हैं—

जागन्नेत्रद्वयोर्मध्ये

हंस एव प्रकाशते।

सकारः खेचरी प्रोक्त-

स्त्वंपदं चेति निश्चितम्।।८२।।

हंकारः परमेशः स्यात्

तत्पदं चेतिनिश्चितम्

सकारो ध्यायते जन्तु-

ईकारोहि भवेत्ध्रुवम्।।८३।।

इन्द्रियैर्वध्यते जीव

आत्मा चैव न बध्यते।

ममत्वेन भवेत् जीवो

निर्ममत्वेन केवलः।।८४।।

जाग्रदवस्था में जीवात्मा रूप हंस दोनों नेत्रों के मध्य में प्रकाशित होता है। सकार को खेचरी शक्ति जीवात्मा कहते हैं। सकार निश्चय ही 'तत्त्वमसि' महावाक्य में स्थित त्वम्पद का वाचक है। हकार परमेश्वर कहलाता है। यह निश्चय ही तत्पद का वाचक है। सकार का ध्यान, शोधन अर्थात् 'नेति नेति' महावाक्य से विवेक करने पर साधक निश्चय ही हकार बन जाता है। सकार और हकार दोनों एक ही हैं, संज्ञा मात्र भेद है, वस्तु भेद नहीं। जीवात्मा का पंचकोश विवेक से परमात्मत्व प्रकाशित हो जाता है। हसः मन्त्र उलटने पर तत्त्वमसि महावाक्य ही है।

मुजफ्फर नगर वाले महा पण्डित श्री मन्नारायण स्वामी ने हमें बताया कि गणित की दृष्टि से भी 'हं सः' दोनों एक सामर्थ्य वाले हैं। अकार से गणना करने पर हकार (ह) उनचासवां (४९वां) वर्ण है। उस पर स्थित अनुस्वार पन्द्रहवें नम्बर पर आता है। 'हं' की शक्ति ६४ है–(४९ + १५ = ६४)। इसी प्रकार अकार से गणना करने पर सकार (स) अड़तालीसवाँ (४८वां) वर्ण है और उसके पीछे विसर्ग का सोलहवाँ (१६वां) नम्बर आता है। सः की शक्ति ६४ है (४८ + १६ = ६४) अतः 'हं' और 'सः' दोनों सत्ता वाले परमार्थ में एक ही तत्त्व हैं। सः शक्ति है 'हं' शक्तिवान् है। शक्ति से शक्तिवान् भिन्न नहीं होता। अतः शक्ति व शक्तिवान् एक ही निर्भेद तत्त्व हैं। हंसः मन्त्र प्राण शोधन के माध्यम से सिद्ध होता है। शोधित प्राण स्थिर हो जाता है। प्राण स्थिर होने पर हं और सः का एकत्त्व सिद्ध होता है। वही आत्मा जब विषयों से बंध जाता है तो जीव कहलाता है और जब विषयों से अलिपायमान रहता है तो मुक्त हो जाता है। ममता से जीव कहलाता है और असंगता से केवल अद्वितीय परमात्मा कहलाता है। सकार में से विषयलोलुपता और ममता शोधित करने पर वह हकार अर्थात् परमात्मा ही हो जाता है, क्योंकि परमार्थ दृष्टि से वह जीव सदा से ही परमात्मा है और रहेगा भी।

हंस योग का साधना विधान

अब हंस मन्त्र जप का अथवा हंसाख्य महायोग का साधना विधान बताते हैं। समस्त हंस शास्त्र में हंस जप विधान सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है। इसे सावधानता से पढ़ना समझना चाहिए। यह गुरु गम्य विषय है। सिद्ध गुरु जैसे बतायें वैसे ही साधना करनी चाहिए। दो–चार विशेष बातें बताई जाती हैं। पहली तो यह है कि यह अजपा जप है, इसका जप स्वतः ही होता है। साधक को श्वास की गतिविधि पर मन की वृत्ति लगानी पड़ती है।

सिद्ध, पद्म, स्वस्तिक अथवा सुखासन पर बैठ जाये, हथेलियों को उलटा करके पाँव पर जमा लें, मेरु दण्ड सीधा कर ले। मन को श्वास के साथ लगा ले। श्वास त्यागते समय

मन से ही ध्वनि करे, जीभ से नहीं। श्वास लेते समय सः की ध्वनि मन से करे। इस प्रकार आरम्भ में १५ मिनट अभ्यास करें। काल पाकर सुषुम्ना में प्राण प्रवेश करेगा, पुनः आज्ञा चक्र का भेदन होगा और नाद सुनाई पड़ेगा। नाद में मन बँध जायेगा और पीछे नाद में मन लय हो जायेगा और उन्मनी अवस्था प्राप्त होगी। यही जीवन्मुक्ति, सहजावस्था, मनोन्मनी समाधि आदि भिन्न नामों से कही जाती है।

कुछ योगाचार्यों के अनुसार मन को विचारों से शून्य करके श्वास के साथ लगा दें और उसकी गतिविधि को तटस्थ होकर निरीक्षण करे श्वास की गतिविधि में हस्तक्षेप न करे, केवल निरीक्षण करे।

यथात्मनः प्राणगतिः स्वाभावात्,
अन्तर्बहिश्चापि भवेत् सुशान्ता।
तथैव सेयं सुनिरीक्षणीया,
न योजनीया न निरोधनीया।।

जब तक प्राण की गति स्वभाव से अपने आप भीतर बाहर से शान्त हो जाये अर्थात् न भीतर से श्वास बाहर आये और न ही बाहर से वायु भीतर जाये तब तक इस प्राण गति का अच्छे प्रकार निरीक्षण करे, यानी मन को इधर–उधर न भागने दे। श्वास को अपनी इच्छा से न तो चलाये और न ही रोके। काल पाकर प्राण लय हो जायेगा।

महावाक्योपनिषद् में इस प्रकार जप विधि लिखी है–

असौ आदित्यो ब्रह्म इति अजपयोपहितं हंसः सोऽहम्। प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां समुपलभ्य एवं साचिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सच्चिदानंदः परमात्माविर्भवति।

वह आदित्य ब्रह्म है। अजपा गायत्री मन्त्र हंसः उपाधि से युक्त ब्रह्म ही जीव है और वह मैं हूँ। मन, बुद्धि, अहंकार, प्राण, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियाँ, स्थूल, देह आदि उपाधियों से ढका हुआ ब्रह्म ही जीवात्मा, हंस बना हुआ है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। उपाधियों के योग से जीवात्मा भासता है। उपाधि रहित होने पर वही हंसः विपर्यय क्रम से 'सः अहम्, सोऽहम्' है यानी वह परब्रह्म परमात्मा मैं ही हूँ। यह पूर्व में बता चुके हैं कि 'हं' अपान वृत्ति को कहते हैं, सः प्राण वृत्ति को कहते हैं। जीवात्मा जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त हंसः हंसः अजपा जप करता रहता है। इस मन्त्र का प्रतिलोम, उल्टा करे यानि सोऽहम् करे, पुनः उसका अनुलोम उल्टे का उल्टा करे यानि सोऽहम्, 'हंसः सोऽहम्' इस प्रकार मन से मन्त्र को उच्चारित करता हुआ वृत्ति लगाये कुछ काल अभ्यास के उपरान्त प्राण सुषुम्ना में गमनागमन करेगा। पुनः

आज्ञाचक्र में स्थित बिन्दु का भेदन करेगा और मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक गतिवान होगा। नाद की अनुभूति होगी। नाद के दस उपभेद हैं। प्रथम नौ नादों को छोड़ कर दसवें नाद का अभ्यास करे। नाद में मन लय हो जायेगा। आगे क्या बताया जाये, स्वयं करके अनुभव कर लें। आज्ञा चक्र भेदन के पश्चात् श्री गुरु के हाथ में डोरी आ जाती है, उनकी अप्रतिहत आज्ञा के अनुसार अग्र पद रखते हुये साधक मंगलमय धाम की दिशा में गमन करे। उनसे दर्शित पथ निष्कण्टक, निरापद होता है।

वह प्राण रूप हंस, हंसः मन्त्र के अभ्यास से पुनः प्रकाशमय नाद में परिणत हो जाता है। उस स्थिति का चिरकाल तक अभ्यास करे। त्रिवृत्त ओंकार (अ + उ + म) जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, अवस्था विश्व तैजस, प्राज्ञ नामक जीव स्थूल, सूक्ष्म, कारण देहों का द्योतक है और ये तीनों उपाधियाँ हैं। उस ओंकार से प्रतिपाद्य अमात्र ब्रह्म के साथ 'सोऽहम्' (वह मैं हूँ) मन्त्र से हंसाख्य जीवात्मा का एकत्व स्थापित करने पर सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप का आविर्भाव होता है, अर्थात् उसके साथ जीव की अभेद प्रतिष्ठा हो जाती है। ओं और सोऽहम् एक ही वस्तु है। सोऽहम् मन्त्र में स्थित स और ह का लोप करने से ओं रूप व्यक्त होता है। अ + उ + म = ॐ। यही ओं वम अर्थात् शिव है, (उ + अ + म), यही ओं उमा अर्थात् पार्वती, ब्रह्म विद्या है (उ + म + अ)। 'सोऽहम्' शिव शक्त्यात्मक मन्त्र है। शक्ति का शिव में लय होने से एक अद्वितीय अनिर्वचनीय ब्रह्म तत्त्व रहता है।

गीता के चौथे अध्याय के २९वें मन्त्र में लिखा है—

अपरे नियताहाराः

प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।।२९।।

श्रीधर स्वामी इस पर टीका लिखते हुए कहते हैं—

दूसरे यानी आहार संकोच का अभ्यास करने वाले यह भावना करते हैं कि शोषित इन्द्रियों में उस-उस इन्द्रिय वृत्ति का लय ही होम है।

यद्वा अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे इति अनेन पूरक रेचक योग वर्तमानयोर्हंसः सोऽहमिति अनुलोमतः प्रतिलोमतश्चाभिव्यमानेन अजपामन्त्रेण तत्तं पदार्थैक्यं व्यतिहारेण भावयन्तीत्यर्थः। तदुक्तं योग शास्त्रे—

सकारेण बहिर्याति

हकारेण विशेत्पुनः।

प्राणस्तत्र स एवाह

हंस इत्यनुचिन्तयेत्।।

दूसरे साधक अपान में प्राण का होम करते हैं। इस श्लोक से यह अर्थ निकलता है कि पूरक रेचक प्राणायाम के आवर्तन (चक्कर में) 'हंसः' 'सोऽहम्' 'हंसः' मन्त्र का अनुलोम प्रतिलोम के बहाने 'तत् त्वम असि' इस महावाक्य के अन्तर्गत तत् तथा त्वम इन दो पदों को एकत्व की भावना होती है। योग शास्त्र में लिखा है—सकार करता हुआ श्वास (अपान) बाहर निकलता है और हकार करता हुआ श्वास (प्राण) पुनः भीतर प्रवेश करता है। 'सः अहम्' वह मैं ही हूँ। '(अ) हंसः' मैं वही हूँ, इस प्रकार उलट पुलट कर श्वास के पीछे–पीछे चिन्तन करें। इस प्रणाली में श्वास के साथ हंसः मन्त्र के अर्थानुसन्धान पर जोर है।

एक अन्य विधि निर्दिष्ट करते हैं—

प्राणादी च विसर्गे वै
अकार स्तिष्ठति सदा।
तत्र ध्यात्वा स्वयं
सिद्धिर्जायते हंस जापिनाम्।।

—श्री विद्याबिन्दु प्रकाश (अमुद्रित) श्वांस खींचने (स:) और त्यागने (अहम्) के मध्य में सदा अकार (अ) रहता है (सः + (अ) + हं)। उस अकार पर मनोवृत्ति अटकाने से हंस जापियों को स्वतः ही सिद्धि प्राप्त होती है। अकार पर यानी प्राण अपान की सन्धि पर किंचित् लघुकाल मन को लगाने से सुषुम्ना पकड़ में आ जाती है और योग का द्वार खुल जाता है। यह बात पहले कही जा चुकी है कि हंसः मन्त्र गुरु–मुख से प्राप्त करना चाहिये। गुरुओं की विधियाँ गुरु लोग ही जानते हैं, उनकी शक्ति अपार और करुणा निःसीम होती है।

हंसः जप, कुण्डलिनी जागरण नादानुभूति ये सब अन्योन्याश्रित साधन हैं। हंस जप से भी नादानुसन्धान होता है, कुण्डलिनी जागरण से भी। हंस मन्त्र से भी कुण्डलिनी जागरित होती है। सब का प्रयोजन लय में है। लय से आगे पुरुषार्थ साध्य नहीं, क्योंकि मन बुद्धि फिर काम नहीं करती। यदि करती हों, तो लय नहीं हुआ है ऐसा समझना चाहिए। लय होने पर बाह्य व्यवहार का लोप हो जाता है।

इन्द्रियाणां मनो नाथो
मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः
स लयो नादमाश्रितः।।

—हठयोग प्रदीपिका ४।२९

इन्द्रियों का स्वामी मन है, मन का स्वामी प्राण है, प्राण का नाथ मन का लय है और मन का लय नाद के आश्रित है। जिनको ब्रह्मतत्व साक्षात्कार में विचार से सफलता नहीं मिलती उन्हें नादानुसन्धान से तत्व बोध हो जाता है। योग तारावली में भगवत्पाद (आदि गुरु भगवान् शंकराचार्य) लिखते हैं–

सदाशिवोक्तानि सपादलक्ष–
लयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसंधान समाधिमेकं
मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।।२।।

भगवान् सदाशिव से कहे हुए लय प्राप्ति के सवा लाख विधियाँ संसार में प्रसिद्ध हैं, लेकिन एकमात्र नादानुसन्धान को ही समस्त लय साधनों में समाधि प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन हम मानते हैं।

नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं
त्वां साधनं तत्त्वपदस्य जाने।
भवत्प्रसादात्पवनेन साकं
विलीयते विष्णु पदे मनो मे।।४।।

हे नादानुसन्धान! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मैं तुम्हें आत्मतत्त्व का साधन जानता हूँ। आपकी कृपा से प्राण के साथ मेरा मन विष्णुपद (समाधि) में लीन हो जाता है। जिस नादानुसंधान की स्तुति भगवत्पाद करते हैं, उसकी प्राप्ति अनायास ही हंस योगियों को होती है।

कपाल कुहर के भीतर प्राण सहित मन घुसने पर क्या–क्या होता है, यह साधना करने वाला ही जान सकता है। संक्षेप में कहते हैं कि आज्ञाचक्र भेदन होने पर बिन्दु कला, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मनी तथा महाबिन्दु योग भूमिकाएँ क्रमशः प्राप्त होती हैं। हंस योग ही महाबिन्दु तक पहुँचा देता है। यही परम गति है।

हंस योग में सिद्धि सहायक कुछ निर्देश देते हैं। भगवत्पाद ने योग तारावली में लिखा है–

उन्मन्यवस्थाधिगमाय विद्वन्
उपायमेकं तव निर्दिशामः।
पश्यन्नुदासीनतया प्रपंचं
संकल्पमुन्मूलय सावधानः।।१९।।

हे विद्वान्! उन्मनी अवस्था प्राप्त करने के लिये तुझे एक उपाय बताते हैं। इस दृश्य जगत को उदासीनता से देखते हुये संकल्प को मूल से खोद कर फेंक दो और सावधान हो जाओ। बड़ौत वाले स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज कहा करते 'जरा उकस कर (ऊँचे उठ कर यानी तटस्थ साक्षी होकर) देखो।' जब अपने को दृष्टा मात्र जान कर जगत पर दृष्टि फेंकोगे तो संकल्पों का उत्थान-पतन शिथिल पड़ जायेगा।

स्त्रीणां चरणौ दृष्टि–
बाह्येषा क्रिया सदा।
अन्तरे रोधिनी दृष्टिः
सद्यस्तत्र प्रवेशनम्।। *–श्री विद्याबिन्दु प्रकाश (अमुद्रित)*

बाह्य जगत में यदि शक्तियों को देखने का अवसर पड़े तो अपनी दृष्टि सदा उनके चरणों में रखे और भीतर में चित्त वृत्ति के निरोध का अभ्यास करे। इस बाह्य और भीतर की क्रिया के संयोग से काल पाकर एकाग्रता प्राप्त होगी और सुषुम्ना मार्ग से प्राण आज्ञाचक्र में प्रवेश करेगा।

हृदि प्राणान् बहिः कामान्
संन्यस्य ब्रह्मचारिणाः।
हं देहाध्यसितं भावं
यो बुद्धेः परतस्तु सः।। *–श्री विद्याबिन्दु प्रकाश (अमुद्रित)*

महाबिन्दु (ब्रह्म) में जाने की इच्छा करने वाले प्राण को हृदय में रोकें यानी प्राण स्थिर करें, बाह्य विषयों की कामनाओं को त्यागें। हंसः मन्त्र के प्रथम अक्षर 'हं' जो कि देह में अहंकार भाव का सूचक है, को लय करें और दूसरे अक्षर सः को अंगीकार करें। वह 'सः' (ब्रह्म) बुद्धि से परे की वस्तु है, अर्थात् उस परमात्मा को परमात्मा बन कर जानें, क्योंकि उसका कोई साक्षी नहीं है।

चिन्मानसे सरसिजे विहरन्ति हंसाः
पक्षावुभौ सूरशशी सुष्मांग तुण्डः।
चित्रागति कुल सुशंखिनी–हंस गीताः
ब्रजे स्थितात्मनि स्वयं प्रतिभाति ब्राह्मी।।
–श्री विद्याबिन्दु प्रकाश (अमुद्रित)

चिन्मय मानसरोवर में जहाँ सहस्त्रदल कमल खिला हुआ है, हंस (हंस योगी) विहार करते हैं। इड़ा पिंगला नाड़ियाँ हंस की दोनों पाँख हैं, सुषुम्ना नाड़ी उसकी आगे की चोंच है।

चित्रा नाड़ी में गतिवान् होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं, सुन्दर शंखिनी नाड़ी में हंस का कलरव सुनते हैं और जब बजा नाड़ी में स्थित हो जाते हैं यानी कूटस्थ बन जाते हैं तो ब्राह्मी स्थिति स्वयं प्रकाशित हो जाती है।

आप ने यह भी देख लिया होगा कि शास्त्रों में श्वास 'हकारेण बहिर्याति' कहीं 'सकारेण बहिर्याति' लिखा है। इसमें कोई विरोध नहीं जानना क्योंकि हकार सकार एक ही है।

श्री विज्ञान भैरव ग्रंथ में मनोलय, समाधि के शताधिक उपाय बताये हैं, उनमें हंस योग भी एक उपाय लिखा है और उसकी साधना प्रणाली भी बताई है। यथा–

मध्य जिह्वे सफारितास्ये
मध्ये निक्षिप्य चेतनाम्।
होच्चारं मनसा कुर्व–
स्ततः शान्ते प्रलीयते।।८१।।

जिह्वा को अन्तराल यानी कपाल कुहर में उलट कर लगाये, मुख को किंचित भीतर ही संकुचित कर ले, चेतना यानी दृष्टि को भ्रू मध्य में स्थिर करके मन से 'हंसः–सोऽहम्' मन्त्र का उच्चारण करे। इस प्रकार अभ्यास से कुछ काल में ही मन प्राण सहित शान्तपद (ब्रह्म) में प्रलीन हो जायेगा। प्रयोजन यह है कि खेचरी मुद्रा बांध कर हंस मन्त्र का जप करे। विवेक मार्तण्ड ग्रंथ में खेचरी मुद्रा का इस प्रकार वर्णन है–

कपाल कुहरे जिह्वा
प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रवोरन्तर्गता दृष्टि–
र्मुद्रा भवति खेचरी।।

जिह्वा को उलट कर तालुमूल में लगाने तथा दृष्टि को भ्रू मध्य (आज्ञाचक्र) में लगाने से खेचरी मुद्रा बनती है।

गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है–

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यां–
श्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा
नासाभ्यन्तर चारिणौ।।५।२७।।

हे अर्जुन! बाह्य विषयों का चिन्तन न करते हुये तथा नेत्रों (दृष्टि) को भ्रू मध्य में स्थिर करते हुये नासिका के भीतर चलने वाले प्राण और अपान को सम करते हुये अर्थात् क्षीण करते हुये (ध्यान करे)।

श्री गुरुदेव के चरण कमलों के सम्पर्क की कुछ हृदयग्राही स्मृतियाँ

(श्री प्रो. ऋषिराम जी एम. ए. दिल्ली)

प्रो. ऋषिराम गुप्त महाराज के 1955 के दशक के शिष्यों में से एक थे। इन्होंने गुरुदेव से योग दीक्षा ली और बड़े लग्न से ध्यानाभ्यास किया करते थे। इन्होंने सर्वप्रथम अपने कोठी में ही गुरुदेव का प्रथम जन्मोत्सव मनाया था। तब से जन्मोत्सव मनाने की प्रथा आज तक अनवरत चल रही है। पढ़िये प्रो. गुप्त के हृदयग्राही स्मृतियाँ। प्रो. गुप्त बीसियों वर्ष पूर्व शरीर छोड़ चुके हैं। (सम्पादक)

हर मनुष्य के जीवन–पथ पर कभी–कभी ऐसे मोड़ आते हैं जहाँ अपनी बुद्धि एवं पुरुषार्थ काम नहीं करता और कोई दैविक–शक्ति ही समय तथा संस्कारानुसार हाथ पकड़ कर ठीक पथ पर चला देती है। ठीक ऐसी ही दैविक–घटना मेरे अपने जीवन में 1955 में घटित हुई। कुछ पारिवारिक एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण मन अतीव दु:खी रहने लगा था। आँखों में प्रायः अश्रु उमड़े रहते थे। जब स्नानार्थ मैं स्नानागार में जाता वहाँ एकांत पाकर घंटा भर के लगभग रोता और फर्श पर माथा रगड़ कर प्रार्थना किया करता था : ''प्रभो! रक्षा करो'' यहाँ तक कि उस समय मेरे माथे पर तिलक की भाँति इसी रगड़ का चिह्न भी बन गया था। मुझे क्या पता था कि 'प्रभु प्रभु' पुकार कर जो मैं प्रार्थना करता हूँ उसके फलस्वरूप वास्तव में किसी दिन श्री महाप्रभु के ही पावन चरण–कमलों में इस पतित को आश्रय मिलेगा।

अनंत श्री गुरुदेव महाराज ने एक बार फरमाया था कि जब–जब भी किसी को उत्कट जिज्ञासा हो जाती है गुरु दर्शन की सद्गुरु तब स्वयं ही उसे ढूँढ़ लेते हैं और आश्रय दे देते हैं। ठीक ऐसा ही मेरे साथ हुआ। उसी वर्ष सितम्बर मास में हिन्दू कालेज के कुछ नये बंगले बन कर तैयार हुए थे और इनमें से एक मुझे मिला। एक दिन शाम को मैं आगे खुले मैदान में विचारमग्न बैठा था कि सहसा मेरी दृष्टि सामने के विश्वविद्यालय मार्ग पर गई। क्या देखता हूँ कि मेरे पुराने मित्र और सखा पं. मनीराम जी, साइकिल पर जा रहे हैं। कुछ वर्ष

पूर्व यह महानुभाव दिल्ली छोड़ कर घर लाडवा लौट गये थे और डी. ए. वी. हाई स्कूल सावाबाद के मुख्याध्यापक भी हो गये थे। मैंने उनको देखा और वे मुझे देखकर साइकिल से उतर गए। बातचीत के बीच उन्होंने बताया कि वे दिल्ली लौट आये हैं और अब फिर यहीं ही रहेंगे। जब उन्होंने मुझसे पूछा मैं यहाँ कैसे बैठा हूँ मैंने कहा 'यह मकान मुझे मिला है।' काफी समय तक एक–दूसरे के विषय में पूछताछ होती रही। पता चला कि उनका विचार दिल्ली में एक 'योगाश्रम' स्थापित करने का है। इस पर मुझे हँसी आ गई क्योंकि वे आर्यसमाजी रहे थे और आर्य–समाज के कुतर्कवाद से मुझे सदा ही घृणा रही थी। मैं भक्ति मार्ग में विश्वास रखता था। इस पर उन्होंने कहा : नहीं, ऋषिराम जी, मैं अब आर्यसमाजी नहीं रहा।' मैं सुन कर कुछ चकित–सा हो गया। अवश्य इनके जीवन में कुछ परिवर्तनशील घटना हुई होगी जिसने इन्हें बदल दिया है। उन्होंने बताया ''मुझे एक परम योगी सद्गुरु के दर्शन हुए हैं और मैंने उनके पावन चरणों का आश्रय लिया है। अब मैं उनका ही प्रचार करना चाहता हूँ। श्री वात्सल्य निधि सद्गुरुदेव महाराज की ही प्रेरणा रही होगी कि मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे भी उनका दर्शन करने का सौभाग्य प्रदान करें। पूछा कैसे मैं दर्शन कर सकता हूँ? मैंने उनको अपना मानसिक दु:ख भी बताया। उन्होंने वचन दिया कि शीघ्र ही वे मुझे अपने गुरुदेव के दर्शन करायेंगे। मेरा यह निवास स्थान दिल्ली नगर की सुविख्यात पहाड़ी के ठीक नीचे जंगल में था। एकदम एकान्त। मैंने उनसे आग्रह किया कि महाराज जब भी दिल्ली पधारें मेरी कुटिया को ही अपने पावन चरण–कमलों की धूल से पवित्र करें। पंडित जी ने तुरन्त ही श्री महाराज जी को दिल्ली पधारने के लिए पत्र द्वारा आग्रह किया होगा।

इसी क्रम में एक दिन ब्रह्मचारी (अब गृहस्थी) ब्रज किशोर से भेंट हुई और उसने बताया कि श्री महाराज दो–तीन दिन में दिल्ली पधार रहे हैं। मन में हलचल उत्पन्न हो गई। मेरे जीवन में कुछ होने जाने वाला है मैंने ऐसा अनुभव किया। जिन्होंने एक आर्यसमाजी को भक्ति–मार्ग पर चला दिया उनके दर्शन होने जा रहे हैं। उत्सुकता और मनोवेग के कारण नींद भूख बन्द सी हो गई। बाहर का कमरा मैंने श्री महाराज के लिए ठीक करवा दिया और जिस प्रकार भीलनी ने राम की प्रतीक्षा की थी मैं भी उनके दर्शन की पुण्य घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन प्रात: ही ब्रजकिशोर जी दौड़े आये और कहा–''गुरुजी आये हैं'', कहाँ हैं?'' मैंने पूछा। ''बाहर खड़े हैं।'' मैं जैसे ही बैठा, नंगे पांव बाहर दौड़ पड़ा। बाहर टैक्सी खड़ी

थी और श्री महाराज अपने सीधे–साधे भेष में एक ओर खड़े थे। मैंने सोचा था कि गुरु महाराज साधु भेष में होंगे, बड़ी–बड़ी जटाएँ आदि भी होंगी। चुपके से पूछा ''कहाँ हैं गुरुजी?'' पंडितजी ने महाराज की ओर संकेत किया। मन जैसे डूब–सा गया। बड़ी निराशा–सी हुई। यह क्या योगी होंगे?'' अपने भावों को दबा कर शिष्टाचार रूप से महाराज जी को प्रणाम किया और सत्कार सहित कमरे तक लाकर आसन पर विराजमान कराया। पंडित जी और ब्रजकिशोर की भाँति मैं भी उनके सामने नीचे बैठ गया। मुझे क्या पता था उस समय क्या होता है गुरु और क्या है उनकी महिमा। स्वयं साक्षात् प्रभु स्वयं घर पर पधारे और एक मूर्ख अज्ञानी की आँख उन्हें पहिचान भी न सकी। मेरे मन में जिज्ञासा हुई थी कि किसी सद्गुरु के दर्शन हों जो शान्ति दे सकें। प्रभु से रक्षा की भीख महीनों माँगी थी। और उस जिज्ञासापूर्ति के हेतु जब स्वयं प्रभु कुटिया पर पधारे और साक्षात् वात्सल्यपूर्ण हृदय को लेकर मेरे सन्मुख विराजमान थे, मैं उनकी महिमा को जान भी न सका। यह है निपट अज्ञान जिसके कारण इस जगत के असंख्य प्राणी अज्ञानान्धकार में भटक–भटक कर दुःख पा रहे हैं।

प्रभु का शुभागमन मेरे नये जीवन की कहानी का प्रथम परिच्छेद था। यहाँ से ही जीवन में एक नया मोड़ आया। सायंकाल आरती हुई। दिल्ली निवासी श्री महाराज जी के कुछ शिष्य इसमें शामिल हुए। मैं भी औरों की देखा–देखी शामिल हुआ परन्तु मुझे कुछ बात जची नहीं। महाराज जी दो–चार दिन मेरी कुटिया पर ठहरे। मैं कॉलेज जाता और फिर वापिस आकर श्री चरणों में बैठ जाता। मेरे मन में जो भाव उत्पन्न होते वे उनको ही लेकर चर्चा शुरू करते और उपदेश देते। इस प्रकार चमत्कार होने लगा। मैं कालेज जाता तो श्री महाराज जी की एक विराट मूर्ति, परम गम्भीर मुद्रा में मेरे समक्ष उपस्थित रहती और ये शब्द मन को सुनाई देते–''ऋषिराम! ये ही तुम्हारे गुरु हैं। तुम्हारी प्रार्थना के उत्तर में तुम्हारा उद्धार करने पधारे हैं।'' रात को सोते और दिन में जागते हर समय यह ही आभास होता ये ही मानसिक कानों को सुनाई पड़ता। मन धीरे–धीरे श्री चरणों पर झुकने लगा। उनकी अपार कृपा।

दिल्ली में मेरे सम्बन्धी लाला हरजीवन एडवोकेट हैं। उम्र में मेरे से 11–12 वर्ष बड़े हैं। वे स्वर्गीय मेहर बाबा के भक्त हैं। मेरा उनका काफी उठना बैठना रहता था मैंने उनको भी श्री गुरुदेव के दर्शन हेतु निमन्त्रित किया। दूसरे दिन वे भी सायंकाल आरती में शामिल हुए। आरती के बाद प्रवचन हुआ। उसके बीच मैंने देखा कि ला. हरजीवन लाल की आँखों से

अश्रुधारा बह रही है और उनका सारा कमीज वक्ष स्थल पर गीला हो गया है। श्री महाराज जी के विश्राम करने के बाद हम दोनों अलग कमरे में रात में 2 बजे तक बैठे बातें करते रहे। उनकी अश्रुधारा अब भी प्रवाहित थी। बड़े गम्भीर स्वर में मुझसे बोले–''लाला ऋषिराम, ये Perfect master अर्थात् पूर्ण सर्वशक्तिमान सद्गुरु हैं। तुम निःसंकोच इनकी शरण ले लो। 2 मास से मेरा मन प्रवाह अवरुद्ध था इनके दर्शन करने पर पहिले तो मुझे भी कुछ जंचा नहीं था, परन्तु प्रवचन के बीच मेरे हृदय का मल धुल गया। ये पूर्ण शक्तिमान गुरु और सर्वशक्तिमान गुरु के शिष्य और उनके समान ही हैं।''

उनके वचन सुनकर परम आनन्द मिला। फिर भी मेरा मन पापी ही रहा। मैं सोचता–''कहीं धोखा न हो जाये। गुरु कोई वस्त्र तो है नहीं कि ठीक न बैठने पर बदल डालो। कहीं ऐसा न हो कि बाद में पछतावा हो और मूर्ख बनूँ।'' इस प्रकार कुछ और समय मूर्ख बना रहा। पंडित जी से बात हुई होती ही रहती थी। उन्होंने कहा–''ऋषिराम जी मैंने आँखें खोल कर इनको गुरु धारणा किया है। आप निश्चित रहें।''

अगले दिन मैं श्री चरणों में बैठा मन ही मन उतार–चढ़ाव कर रहा था। महाराज जी ने फरमाया–''कोई शंका?'' मैंने उत्तर दिया ''महाराज जी एक शंका केवल शेष है। आप जो जाति भेद करते हैं और इतना छूत–छात, यह समझ में नहीं आता।'' इस शंका का समाधान आपने शास्त्रीय और योग सिद्धान्तों के आधार पर प्रशान्त महासागर की गरिमा के साथ किया और मैं काफी संतुष्ट हो गया। उसी दिन पिछले पहर महाराज जी कहने लगे–''अच्छा ऋषिराम, अब हम वापिस जाना चाहते हैं। मैंने और ठहरने का आग्रह किया। श्री प्रभु जी ने कहा 'यदि तुम दीक्षा लोगे तो हम एक–दो दिन और ठहर जायेंगे, अन्यथा चलना चाहेंगे। यदि कोई शंका हो निवारण कर लो'' सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा–''महाराज जी कल दीक्षा दे दीजिये।'' भला जिस कार्य के लिए वे स्वयं पधारे थे, अर्थात् मेरा उद्धार करना उसको अधूरा छोड़ कर कैसे जाते। यह दैविक शक्ति ही जीवन के मोड़ पर खड़ी पथ–प्रदर्शन कर रही थी। अगले दिन मेरे सौभाग्य का उदय हुआ और श्री महाराज जी ने मेरे कल्याणार्थ मुझे दीक्षित किया। उसके बाद 2–3 दिन और सद्गुरु देव कुटिया पर ठहरे और एक दिन प्रातः वापिस पुण्यधाम सवांई चले गये।

जीवन में एक उथल–पुथल मच गई। मेरे अन्दर एक उन्माद–सा हो गया। उठते–बैठते हर समय उनका ही ध्यान रहता। उनकी परम कृपा का सागर उमड़ा पड़ रहा था। मैंने अपनी कुटिया को महाराज का आश्रम ही समझ लिया और एक सेवक की तरह ही मैं उनके ध्यान

में मग्न रहने लगा। एक नये आनन्द और उल्लास की अनुभूति होने लगी। इस प्रकार एक नये जीवन का श्री गणेश हुआ।

आगे जो कुछ हुआ उसका उल्लेख आज्ञा मिलने पर फिर कभी करूँगा। यहाँ यह कह देना चाहता हूँ कि मेरे मन में एक विचित्र विश्वास उत्पन्न हो गया और प्रभु–आश्रित हो मैं सर्वथा निर्भीक हो गया, और आज तक हूँ। परन्तु अपने अज्ञान के कारण अतुल वात्सल्य और कृपा पाने पर भी मैं उनकी महिमा न जान सका, गुरु महिमा के रहस्य से अनभिज्ञ रहा। उनकी कृपाएँ किस प्रकार होती हैं इस समय समझ न सका, क्योंकि समझ थी ही नहीं–ठोकरें लगे बिना मनुष्य मनुष्य नहीं बनता। मेरे संस्कार बड़े क्लिष्ट थे। मुझे झंजोरे बिना उनका टलना कठिन था। मुझे भी श्री महाराज ने, जिस प्रकार धोबी कपड़ों को पत्थर पर कूटता है, उनकी मैल हटाने के लिए, कूट–पीट कर रख दिया। बड़े–बड़े तूफान जीवन सागर में आये, नय्या डगमगाई, परन्तु उनका परम कृपाहस्त मेरे सिर पर रहा। समय बीत गया, संस्कार ढल गए, नय्या तट पर आ पहुँची और जब यह भयानक सपना समाप्त हुआ। आँखें मलता हुआ मैं जागा अब कुछ आँखें खुलीं और थोड़ा–थोड़ा ज्ञान हुआ कि जो निधि मुझे अपने सहस्त्रों गुरु भाइयों की भाँति उपलब्ध हुई थी साधारण नहीं है, संस्कार तो भुगतने ही पड़ते हैं। ''अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतम् कर्म शुभाशुभम्'' परन्तु जब कोई सर्वशक्तिमान सद्गुरु पथ निर्देशन करते हैं तो भक्त की क्षति तो कुछ हो ही नहीं पाती, कटु अनुभवों में भी एक मिठास उत्पन्न हो जाती है और सद्गुरु की किस प्रकार कृपा होती है उसका कुछ ज्ञान होने लगता है। चौदह वर्ष मुझे श्री चरणों में आए हो गये हैं। परन्तु उस आरंभ के उन्माद और आज के उन्माद में भारी अन्तर है। उस समय यह एक बचपन का सा उन्माद था। आज का नशा गहरा और ठोस है। एक उर्दू कवि ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा है–

'इंतहाए नशा से आता है होश, होश है इंतहाए नशा' अर्थात् जब शिष्य का भक्ति उन्माद गहरा हो जाता है उसको होश आता है अर्थात् ज्ञान होता है। और जो होश में अपने को समझते हैं वे शराबी की भाँति नशे अर्थात् अज्ञान अंधकार में होते हैं। ठोकरें खाकर उनके स्वरूप को मैं आज कुछ–कुछ पहिचानने लगा हूँ। पूरी पहचान हो जाने पर तो मुक्ति–द्वार के पट ही खुल जाते हैं। परन्तु आज मेरे लिए गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्द सर्वथा सार्थक हो गये हैं–श्री गुरु चरणों की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है–

''बड़ भाग मिलहिं जासु''

हम सहस्त्रों गुरु भाइयों का परम सौभाग्य है कि आज के युग में भी हमें इस परम विभूति के दर्शन हो रहे हैं और इनकी अपार कृपा और वात्सल्य का जो प्रबल प्रवाह बहता रहता है उसमें स्नान कर अपना उद्धार कर पाने का अवसर हमें मिल रहा है। इस अवसर से पूरा–पूरा लाभ उठाना काम हमारा है, उनकी कृपा तो है ही और सदैव बनी रहेगी।

जय गुरुदेव।

❁ क्या करना चाहिए ❁

(समर्थ रामदास के उपदेश)

प्रातःकाल उठकर कुछ पाठ और परमात्मा का यथाशक्ति स्मरण करना चाहिए फिर ऐसी दिशा में जाना चाहिए जिसका किसी को पता न चले और वहाँ निर्मल जल से शौच तथा आचमन आदि करना चाहिए। मुख मार्जन, प्रातः स्नान, संध्या तर्पण, देवार्चन और अग्नि की सांगोपांग उपासना करनी चाहिए। इसके बाद कुछ फलाहार करके सांसारिक कार्यों में लगना चाहिए और उत्तम बातों से सब लोगों को प्रसन्न रखना चाहिए। अपने–अपने व्यापार में सब को सावधान रहना चाहिए। दुश्चित्त रहने से लोग धोखा खाते हैं। दुश्चित्त तथा आलसी रहने से यह प्रत्यक्ष फल देखने में आता है कि मनुष्य चूक जाता है और धोखा खाता है। कहीं कोई बात भूल जाता है तो कहीं कोई। वस्तु छोड़ या खो देता है और तब उसके लिये दुःखी होता है। इसलिये मन को सदा सावधान और एकाग्र रखना चाहिए तभी भोजन भी मीठा और स्वादिष्ट लगता है। भोजन करने के बाद कुछ अध्ययन और अच्छी बातों की चर्चा करनी चाहिए और एकान्त में बैठकर अनेक प्रकार के ग्रन्थों पर विचार करना चाहिए। तभी मनुष्य पूर्ण बन सकता है नहीं तो अपूर्ण ही बना रहता है।

अद्भुत योग सामर्थ्य

(श्री विष्णुदत्त शर्मा, काशी हिन्दू, विश्वविद्यालय)

यह सारा संसार माया का कार्य है और इसलिये माया ही इस सम्पूर्ण जगत प्रपंच का मूल कारण है। व्यवहारिक जगत में भी यह देखने में आता है कि जब कारण से कार्य की उत्पत्ति हो जाती है तो कारण, कार्य में तिरोहित हो जाता है और केवल कार्य ही उसका सत्य रूप भाषित होता है। उदाहरणार्थ जैसे वस्त्रों में रुई वस्त्रों का कारण होते हुये भी उनमें रुई होने का भाव तिरोहित रहता है। इसीलिए माया का निरूपण करते हुए उपनिषदों में कहा गया है कि–

शक्तिद्वयं हि मायायाः
विक्षेपावृतिरूपकं।
विक्षेपशक्ति र्लिङ्गादि
ब्रह्माण्डान्त जगत सजेत।।
आवरणोत्यपस शक्तिः
या संसारस्य कारणम्।

अर्थात् माया की दो शक्तियाँ हैं। पहली विक्षेप शक्ति और दूसरी है आवरण शक्ति। विक्षेप शक्ति ने ही सूक्ष्म शरीर से लेकर के समस्त ब्रह्माण्ड की रचना की है और आवरण शक्ति ने कारण रूप माया को छिपा करके विक्षेप शक्ति के कार्य को ही सत्यभाषित कर दिया है। अतएव आवरण शक्ति रूपी अविद्या के हटे बिना इस जगत की वास्तविकता का पता नहीं चल पाता। संसार के अज्ञानी पुरुष इसी भ्रम से भ्रमित हुये सारे संसार को सत्य मान करके त्रय तापों से अनवरत दुःखी हो रहे हैं, किन्तु योगी लोग अपनी योग सामर्थ्य से माया की इन दोनों शक्तियों के रहस्य को समझकर संसार की वास्तविकता को यथार्थ रूप से देखते हैं। और दूसरों को भी दिखलाने की सामर्थ्य रखते हैं। इसी सन्दर्भ में हम एक योगी के अद्भुत योग–सामर्थ्य का प्रकरण यहाँ उल्लिखित कर रहे हैं।

यह कथा श्री दत्तभार्गव संवाद के अन्तर्गत भगवान परशुराम को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हुये महेश्वर गुरु भगवान श्री दत्तात्रेय जी ने सुनायी है जो कि निम्न प्रकार से है–

प्राचीन काल में बंगाल देश के अन्तर्गत सुन्दरपुर नाम का एक बड़ा ही भव्य शहर था जहाँ का बुद्धिमान राजा सुषेण था। राजा सुषेण का लघु भ्राता 'महासेन' बड़ा ही पराक्रमी एवं महारथी था। एक बार अश्वमेध यज्ञ के लिए छोड़े गये घोड़े के साथ सुषेण का पराक्रमी पुत्र 'चतुर्दिक' अन्य राजाओं को अपने पराक्रम से परास्त करते हुये घोड़े के साथ ईरावती नदी के किनारे जा पहुंचा। दैव-संयोग से उसे महान तपस्वी राजर्षि तंगण के दर्शन प्राप्त हुये परन्तु राज्याभिमान एवं अपने पराक्रम के मद में चूर उस राजकुमार ने न तो महर्षि का अभिवादन ही किया न उनसे भेंट ही की। वह उनकी अवहेलना कर आगे बढ़ गया। वहाँ उपस्थित राजर्षि तंगण के पुत्र ने राजकुमार द्वारा अपने पिता का अपमान हुआ जानकर अत्यन्त क्रोध किया और देखते ही उस अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को राजकुमार से छीनकर समीपवर्ती पर्वतीय गुफा में घुस गया। राजकुमार ने भी क्रोध के आवेश में शस्त्रों की ऐसी वर्षा की कि वह पहाड़ी नष्ट-भ्रष्ट हो गई। पहाड़ी के टूट जाने पर वह तंगण सुत एक विशाल सेना के साथ उस पहाड़ी गुफा से बाहर निकला और राजकुमार से भयंकर युद्ध करने लगा। राजपुत्र की अधिकांश सेना मारी गई और वह तंगण-पुत्र उस पराजित राजकुमार को बाँध कर फिर गुफा में चला गया। सेना के बचे हुये लोगों ने राजा सुषेण के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। यह सुनकर राजा ने तुरन्त अपने लघुभ्राता महासेन को बुलाया और उसे आज्ञा दी "वत्स तुम तंगण मुनि के आश्रम में जाओ। तपस्वियों की बड़ी सामर्थ्य होती है। मुनि को प्रसन्न कर यज्ञ के घोड़े को और पुत्र को लेकर जल्द वापस आओ। तपस्वियों के सामने क्रोध करने से कार्य नहीं बनेगा। अतएव उन्हें प्रसन्न कर अपना कार्य कर लेना।"

राजा की आज्ञा पाकर महासेन तंगण मुनि के आश्रम में पहुँचा। मुनि समाधिस्थ थे। उनका शरीर लकड़ी सा हो गया था, मन और सभी इन्द्रियाँ शांत थीं। उनका अहंभाव निर्विकल्प दशा के अपार समुद्र में लीन हो गया था। उन्हें देखते ही महासेन ने आदरपूर्वक साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर स्तुति करके वह उस मुनीश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा। स्तुति करते करते तीन दिन बीत गये। पिता की स्तुति से प्रसन्न होकर मुनि पुत्र बाहर आया और महासेन से कहने लगा 'राजन् तेरी स्तुति से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं इन महामुनि का पुत्र हूँ। तुम अपना मनोरथ बतलाओ, मैं अवश्य ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। अभी मेरे पिता का समाधि से उठने का समय नहीं आया है। ये अभी बारह वर्ष के बाद समाधि से उठेंगे। इनसे तुम्हें क्या चाहिए, बताओ मैं अभी पूरा करूँगा।

इस प्रकार की बातें सुनकर महासेन ने उस मुनि–पुत्र को प्रणाम किया और कहने लगे 'मुनि–पुत्र मेरी तो यही इच्छा है कि तुम्हारे पिता समाधि से जागृत हो जावें और उनसे ही मैं विनय करूँ। राजा के यह वचन सुनकर वह मुनि–पुत्र कहने लगा ''राजन! तुम्हारी इस प्रकार की इच्छा का कार्यान्वित होना असंभव है परन्तु दिये हुये वचन के द्वारा मैं भी बद्ध हूँ अतएव देखो मैं समाधि से जागृत कराने का प्रयास करता हूँ। ऐसा कहकर उस मुनि–पुत्र ने वहाँ आसन लगा लिया और इन्द्रियों का पूर्ण रूपेण निरोध कर प्राण वायु को अपान वायु के साथ समन्वित कर अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा उसने अपने पिता के शरीर में प्रवेश किया तथा पिता के शान्त मन को अपने मंतव्य की ओर आकर्षित करके पुनः अपने स्थूल शरीर में लौट आया जिसके प्रभाव से मुनिराज समाधि से जागृत हो गये। राजा उनके चरणों पर गिरकर स्तुति करने लगा। संत हृदय मुनिवर राजा पर प्रसन्न होकर के तथा अभ्यान्तिक रूप से सारी घटनाओं को जान कर अपरोक्ष रूप से अपने पुत्र से बोले 'पुत्र! फिर इस प्रकार का कार्य तुम भविष्य में नहीं करना। क्रोध तप का घातक है। किसी के कार्य में विघ्न डालना दैत्यों का स्वभाव है। मुनियों का यह धर्म नहीं है। अतएव रागद्वेश छोड़ कर घोड़े और राज–पुत्र को उन्हें शीघ्र दे दो।' पिता के वचन सुनकर मुनि–पुत्र का क्रोध शांत हो गया और गुफा में जाकर उसने तुरन्त घोड़े और राज–पुत्र को लाकर प्रीति पूर्वक महासेन के हवाले कर दिया। महासेन ने इन दोनों को घर की ओर रवाना कर दिया और उपरोक्त घटनाओं से आश्चर्यान्वित होकर मुनिराज से बोला 'महात्मन! गिरि के इस गहवर में मेरा भतीजा तथा घोड़ा अब तक कैसे जीवित थे। इसका रहस्य आप मुझ पर कृपा कर अवश्य बतला दीजिए।'' मुस्कराते हुए तंगण मुनि ने कहा ''पहले मैं भी एक राजा था। हजारों वर्षों तक मैं इस विस्तृत राज्य पर शासन करता रहा परन्तु एक दिन एकाएक ईश्वरीय कृपा से मुझे अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान हो गया और उसी समय से राज्य एवं ऐश्वर्यों का तुमुल प्रलोभन मुझे एक प्रपंच सा प्रतीत होने लगा। लोक व्यवहार आडंबर सा प्रतीत होता था। इसीलिए राज्य को छोड़कर मैं इस घनघोर वन में चला आया। मेरी धर्म परायणा रानी भी मेरे साथ हो ली। घनघोर तप में हम दोनों संलग्न हो गये। दिन रात्रि में, रात्रि दिन महीनों में और वर्ष अर्बुद संवत्सरों में बदलता गया। कठिन तपस्या के फलस्वरूप तन निर्मल हो गया, मन की चंचलता स्वयं समाप्त हो गयी और हम चिदानन्द आत्मस्वरूप–स्थिति में निरन्तर रहने लगे। पतिव्रत धर्म का निर्वाह करते हुये मेरी पत्नी भी पूर्ण निर्विकल्प समाधि को प्राप्त हो गई। ईश्वर की परम प्रेरणा से एवं भविष्यकालीन नियति के अचिन्त्य प्रभाव के कारण मेरी

स्त्री ने इस पुत्र को जन्म दिया तथा पुत्र को मुझे समर्पित करके उसने योगशक्ति द्वारा प्राण का अपने शरीर से विसर्जन कर दिया। तत्पश्चात् मैं ही इसका पालन–पोषण करता रहा। आगे चलकर मेरे उपदेश से इसने उत्कृष्ट योग–सिद्धि प्राप्त कर ली। एक बार इसके मन में राज्य–संचालन करने की इच्छा हुई। संकल्प मात्र से इसने इस पहाड़ी में अपने योग बल से एक विस्तृत राज्य का निर्माण कर लिया। उसी राज्य में इसने तुम्हारे राजकुमार एवं घोड़े को बन्द कर रखा था।' इस पर महासेन और आश्चर्यचकित होकर बोला–'भगवन! क्या मैं उस राज्य को देख सकता हूँ? कृपा करके मुझे अवश्य ही इस राज्य को दिखला दीजिए।' राजा की इस प्रार्थना को सुनकर मुनि अपने पुत्र से बोले 'वत्स! इस राजा को अपने राज्य ऐश्वर्य को दिखलाओ।' मुनि–पुत्र राजा को लेकर उस पहाड़ी के निकट पहुँचा और अपनी अणिमादिक सिद्धियों द्वारा उस चट्टानी पहाड़ में प्रवेश करके अन्दर से राजा को बुलाने लगा। परन्तु संसारी जीव राजा भला पत्थर में कैसे प्रवेश कर सकता था। जब मुनि–पुत्र ने देखा कि राजा अन्दर आने में असमर्थ है तो पुनः बाहर आकर राजा से बोला 'अरे! तू योगाभ्यासी नहीं है। इसीलिए तेरे लिये अन्दर प्रवेश करना असम्भव है। योग–विद्या के बिना यह पहाड़ी सभी व्यक्तियों को स्थूल रूप ही प्रतीत होगी। तुम ऐसा करो कि अपने इस स्थूल शरीर को इस झाड़ी में छोड़ दो तथा सूक्ष्म शरीर से मेरे साथ इस पहाड़ी में अन्दर चलो। मुनि–पुत्र के विचित्र शब्दों को सुनकर राजा बोला 'शरीर को मैं कैसे अलग कर सकता हूँ। इससे तो मेरी मृत्यु ही हो जायेगी। यह बात तो मेरे लिये संभव नहीं है।

मुनिपुत्र राजा की बातों को सुनकर जोर से हँसने लगा और बोला 'राजन! तुझे योग का जरा सा भी ज्ञान नहीं है। अब तुम अपनी आँखें बन्द कर लो।' राजा ने ऐसा ही किया। मुनि–पुत्र योग–शक्ति से राजा के शरीर में घुसकर उसके सूक्ष्म शरीर को बाहर ले आया तथा उसके स्थूल शरीर को वहीं गड्ढे में डाल दिया। अब दोनों ने उस पहाड़ी में प्रवेश किया। अन्दर जाकर मुनि–पुत्र ने पुनः एक स्थूल शरीर का निर्माण किया, तथा राजा के लिंग शरीर को उसमें प्रवेश करा दिया जिससे राजा को बाह्य जगत की अनुभूति होने लगी। उसने देखा कि वह मुनि–पुत्र के साथ आकाश में उड़ा जा रहा है। राजा को कुछ भय सा प्रतीत होने लगा। आन्तरिक भावों को जानकर मुनि–पुत्र ने उससे कहा 'राजन! डरो मत, तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा। धैर्य धारण कर के पहाड़ के अन्दर मेरे द्वारा इस निर्मित राज्य का अवलोकन करो।'' राजा को धीरज हुआ और वह देखने लगा। उसे दूर का आकाश विकट अन्धकार से ग्रसित दिखाई दिया। वहाँ नक्षत्र विराजमान थे। वहाँ से आगे

जाते–जाते उसे चन्द्रमण्डल मिला। आगे सूर्य मण्डल मिला जिसकी उष्णता से राजा जलने लगा, तब मुनि–पुत्र ने अपने योगबल से उसे शीतलता प्रदान की। कुछ समय में वे दोनों मेरु शिखर पर उतरे। मुनि–पुत्र ने राजा महासेन को सूक्ष्म और व्यापक दृष्टि प्रदान की जिससे उसने लोकालोक पर्वत की फैली हुई पंक्ति को देखा। उसके आगे घोर अन्धकार था, फिर सुवर्ण की भूमि थी। अनेक समुद्र, नदियों और पर्वतों से भरे हुये सप्त द्वीप, भुवन, इन्द्रादि देवता, दैत्य, मनुष्य, राक्षस, यक्ष, किन्नर आदि सब उस राजा को दिखाई पड़े। वहाँ सत्यलोक, बैकुण्ठ, कैलाश आदि सभी स्थान थे मुनि पुत्र स्वयं विष्णु, महेश और ब्रह्मदेव का रूप धारण कर तीन पृथक्–पृथक् नाम रूपों से वहाँ निवास करता था। वहाँ राजा ने उस मुनि–पुत्र को सार्वभौम शासन करते हुये भी देखा।

मुनि–पुत्र के इस अद्‌भुत योग–सामर्थ्य को देखकर राजा अचंभित हो गया। फिर मुनि–पुत्र उससे कहने लगा "महासेन क्या तुझे मालूम है कि इस नूतन स्थान को देखते–देखते कितने वर्ष बीत चुके हैं? यहाँ अभी एक ही दिन हुआ है परन्तु बारह अर्बुद वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। चलो, अब अपने भू–प्रदेश को चलें। जहाँ मेरे पिता हैं वहाँ जाकर देखें।"

ऐसा कहकर और राजा को साथ लेकर मुनि–पुत्र ने वहाँ से आकाश में उड़ान मारी और दोनों पहले की तरह बाहर आ गये। गुफा से बाहर निकलते समय राजा को निद्रित कर और उसके सूक्ष्म शरीर को उसके पूर्व स्थूल शरीर में प्रविष्ट करा दिया। जागृत होने पर महासेन को बाह्य भू प्रदेश वहाँ की भूमि, झाड़, मनुष्य, नदी, तालाब, इत्यादि सभी चीजें नयी दिखाई दीं। वह आश्चर्य के साथ मुनि–पुत्र से कहने लगा "महात्मन, आपने मुझे यह कौन सा प्रदेश दिखलाया है? पहले देखा उससे तो यह भिन्न है। यह क्या चमत्कार है?" मुनि–पुत्र बोला "राजन यह वही प्रदेश है जहाँ हम रहते थे। दीर्घकाल व्यतीत हो जाने के कारण इसका स्वरूप बदल गया है। पहाड़ी गुफा में जब आपने एक दिन बिताया तब यहाँ बारह अर्बुद वर्ष बीत गये। मैंने तो इन बातों को कई बार देखा है। देखो, मेरे सामर्थ्यवान पिता यहाँ समाधि लगाये बैठे हैं। देखो, यह वही पहाड़ी है जिसमें मैंने तुम्हें अपनी भिन्न सृष्टि दिखलाई है। इस समय तक तेरे भाई के वंश में हजारों पीढ़ियाँ हो गयी हैं। इस तरह से संसार की स्थिति में सदैव परिवर्तन होता है। संसार का यही नियम है। कालगति के कारण पर्वतों के स्थान पर समुद्र और समुद्रों के स्थान पर पर्वत उत्पन्न हो जाते हैं। पत्थर के समान कठोर भूमि अतिशय उपजाऊ बन जाती है और उपजाऊ जमीन वीरान हो जाती है। रत्न पत्थर हो जाते हैं और पत्थर रत्न। इस तरह से समय पाकर इस संसार पर

भिन्न–भिन्न परिणाम होते हैं।''

मुनि–पुत्र के इस भाषण को सुनकर राजा महासेन अत्यन्त शोकाकुल हो गया और वह दीन मनुष्य की तरह विलाप करने लगा। अपने कुटम्बियों का बार–बार स्मरण कर मोहवश शोक करते देख मुनि–पुत्र उस महासेन को इस प्रकार समझाने लगा ''राजन! यह बतला कि तू किसके लिए और क्यों शोक करता है?'' इस प्रश्न को सुनकर महासेन बड़े दुःख के साथ कहने लगा, ''प्रभो! आप मेरा सर्वस्व नाश हो जाने पर भी कारण पूछ रहे हो।'' मुनि–पुत्र को यह सुनकर हँसी आ गई। वह कहने लगा ''राजन, क्या यह तेरा कुल धर्म ही है धीरज रख कर यह विचार कर तू स्वयं यथार्थ में कौन है और जिन्हें नष्ट समझकर तू शोक कर रहा है वे कौन हैं? क्या तू शरीर ही है अथवा उससे कुछ भिन्न है? शरीर जड़ पदार्थों का समुदाय है। सब समुदाय के अथवा किसी अङ्ग के नाश को ही नाश कहते हैं। फिर देह के अंशों का नाश तो प्रतिक्षण हो रहा है। मल, मूत्र, कफ, नख, बाल आदि का लगातार नाश हो रहा है अतएव तुझे हमेशा ही रोते ही रहना चाहिए।

राजन! अब मैं तुम्हें वास्तविकता बतलाता हूँ। मुख्य बात यह है कि तू देह नहीं है देही है। क्योंकि तू जैसे 'यह मेरा वस्त्र है' कहता है वैसे ही 'यह मेरा शरीर है' कहता है; फिर बतला कि तू देह ही कैसे हो सकता है? जब तू देह से भिन्न है तब दूसरों की देहों से तेरा क्या सम्बन्ध है? और फिर उनके शरीर नष्ट हो जाने पर तुझे शोक क्यों करना चाहिए? मेरा शरीर, मेरा प्राण, मेरा मन, इत्यादि कहने वाला तू स्वयं किस स्वरूप का है?

मुनि–पुत्र की इन बातों को सुनकर महासेन कुछ देर तक विचार करता रहा परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर न मिलने के कारण अंत में वह दीनता से कहने लगा–'भगवन, सचमुच मैं शोक कर रहा हूँ परन्तु मुझे इसका कारण नहीं मालूम होता। मैं अज्ञानी हूँ, आपकी शरण हूँ। मुझे इन बातों को स्पष्ट रूप से समझा दीजिए।'

यह सुनकर मुनि–पुत्र कहने लगा–'राजा सुन! माया के कारण सब लोग मूढ़ हो गये हैं। वे अपने स्वरूप को पहिचाने बिना व्यर्थ शोक किया करते हैं। जब तक मनुष्य अपने स्वरूप को नहीं जानता तब तक वह दुःख पाता है परन्तु उसे जान लेने पर वह कभी दुःखी हो ही नहीं सकता। लोग स्वप्न में मोहवश होकर और स्वयं को भूलकर जैसे दुःख करने लगते हैं उसी तरह माया से भ्रमित होकर मनुष्य व्यर्थ दुःख पाते हैं। परन्तु स्वप्न से जागृति हो जाने पर जैसे वे शोक नहीं करते और दूसरे शोक करने वालों को देखकर उलटे हँसते हैं उसी तरह आत्म–स्वरूप को जानने वाले योगी पुरुष इस माया से छूटकर दुःख रहित हो

जाते हैं, और तेरे सरीखे माया से मोहित पागलों को देखकर हँसते हैं। इसीलिए राजन् अब इस संसार को स्वप्न समझकर शोक को त्याग दो। इस संसार चित्र का दर्पण चिद्रूप आत्मा को समझ कर एक बार अपने अन्तःकरण को परमानन्द से ओत प्रोत कर लो। चैतन्य की भावना का सामर्थ्य तुझ में माया के कारण आवृत हो गया है। मैं एक क्षुद्र जीव हूँ, हृदय की यह दृढ़ ग्रन्थि उस माया का स्वरूप है। इस माया के आवरण के नष्ट होते ही तेरी वह शक्ति सिद्ध हो जावेगी। इसलिए, राजन आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर तू इस दुस्तर माया से पार हो और विवेक के बल से इस मोह जनित शोक को दूर कर फिर मेरी तरह तू भी सर्व–सामर्थ्यवान हो जावेगा।'

मुनि–पुत्र के इन शब्दों को सुनकर महासेन ने शुद्ध बुद्धि के साथ विचार किया और अंत में संसार की दशा को स्वप्न समझ कर उसने शोक त्याग दिया, मानसिक स्वस्थता प्राप्त कर लेने पर उसके सभी भ्रम दूर हो गये। समस्त ज्ञेय बातों को जान लेने पर उसका अन्तःकरण भी शुद्ध हो गया। समाधि का अभ्यास करके उसने अद्भुत योग सामर्थ्य प्राप्त किया और सर्व समर्थ होकर इस पृथ्वी पर चिरकाल तक वास किया। शरीर के अहंभाव को नष्ट करके शुद्ध चित्त स्वरूप आश्रय से अंत में उसे परम निर्वाण पद प्राप्त हो गया।

परम गुरु का शास्त्रों में निम्नांकित स्वरूप वर्णित है–

''चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्याः संछिन्नसंशयाः।।

अर्थात् ''आश्चर्य है कि वटवृक्ष के नीचे एक युवा गुरु बैठे हैं, और उनके चारों ओर बैठे शिष्य ऋषि वृद्ध हैं। गुरु मौन प्रवचन कर रहे हैं और इससे शिष्यों के सभी सन्देह मिट गये हैं।''

स्वास्थ्य

योग-आसन

त्रिकोणासन

यह आसन भी पूर्ववत खड़े होकर ही किया जाता है, क्योंकि इसके करने से करने वाले के शरीर की आकृति त्रिभुजाकार बन जाती है। अतः इस आसन का नाम त्रिकोणासन है।

विधि – समान भाव से सीधे खड़े होकर अपने दोनों पैरों के मध्य में लगभग दो या तीन फुट का फैसला कर दें। किन्तु पैरों के तनाव में कोई कमी न आये, इसके बाद अपने आप को बाईं ओर झुका दीजिए, अपने बायें हाथ को बिल्कुल तनाव के साथ नीचे की ओर लाकर अपने बायें पैर के अगूठे को स्पर्श कीजिए। यह ख्याल अवश्य रखें कि पैर एवं स्पर्श करने वाले हाथ में कोई शिथिलता न आए (कोई सिकन न पड़े) उधर अपने दाहिने हाथ को शिर के ऊपर से घुमाकर तनाव के साथ बाईं ओर झुकाकर सीधा रखें। इसी प्रकार से दूसरी ओर के पैर व भुजा से अभ्यास कर, प्रथम दिन के अभ्यास में पैर का अगूठा न भी छुआ जा सके तो भी कोई बात नहीं, किन्तु तनाव में कोई शिथिलता न आए, इसी का नाम त्रिकोणास है।

लाभ– मेरुदण्ड पर तनाव पड़ने से रीढ़ की हड्डी में होने वाली बीमारियों के लिए लाभप्रद है। गृध्रसी आदि वायु इसके बराबर अभ्यास करने से दूर होती है। (गृध्रसीवात – जो वायु नितम्ब भाग से लेकर पाद तल तक बराबर कष्ट देती रहती है। बड़ा असह्य दर्द पैदा करती है। इसके अतिरिक्त उस गृध्रसी वायु के लिए ये आसन परम हितकर है) पाचन क्रिया सुधरती है, निरन्तर अभ्यास करने से भूख बढ़ने लगती है। शौच खुलासा होने लगता है। जिनको इस प्रकार की तकलीफ हो उसके लिए यह आसन परम श्रेयस्कर है।

गीता जी के विविध पालनीय बिन्दु

- जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों में दुःखरूप दोषों का बार-बार देखना।
- प्रकृति के गुणों द्वारा विचलित नहीं होना, क्योंकि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं।
- ब्रह्मचर्य का पालन करना।
- देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषों का यथायोग्य पूजन करना, पूज्य भाव रखना। जीवन्मुक्त महापुरुषों से सुनकर उपासना करना।
- मन को सदा प्रसन्न रखना। अनुकूलता में सम रहना तथा व्यथित न होना। कोई भी परिस्थिति आये, ऐसा समझे कि आने-जाने वाली और अनित्य है इसलिए सहन करें तथा इस मंत्र का जप करें। 'आगमापायिनोऽनित्याः।'
- यथायोग्य नियत तिथि, वार आदि को अन्य देवताओं का निष्कामभावपूर्वक पूजन-अर्चन करना।
- सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणोंद्वारा किये जाते हैं। अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मन लेता है। अतः किसी भी कार्य में अपने को कारण नहीं मानें, केवल निमित्तमात्र मानें।

  शास्त्रविधि के अनुसार चलें। कल्याणकारी शास्त्रों को आदर्श मानें।

  सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान् को अर्पण करनी चाहिए। जो कुछ करें, जो कुछ खायें, जो कुछ हवन करें, जो कुछ दान दें, जो कुछ तप करें- सब कुछ प्रभु को अर्पण करें।
- ज्यादा नींद नहीं लें तथा आवश्यकता से कम नींद भी न लें। आवश्यकता से अधिक भोजन न करें तथा जानकर भूखे न रहें। पूर्णिमा, एकादशी आदि व्रत शास्त्रोक्त होने से करने चाहिए।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20

OCTOBER 2018

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता,
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽति गम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञानता,
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता सत्स्वेव संदृश्यते।।

धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान देने में अत्यन्त उत्साह का होना, मित्रों के प्रति निष्कपटता, गुरु के प्रति नम्रता, अन्तःकरण में समुद्र के समान गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणों में रसिकता, शास्त्रों में विज्ञता, रूप में सुन्दरता और परमेश्वर की भक्ति- ये सारी सज्जनों में ही दृष्टिगोचर होती है।

संस्थापक:- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566
सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा